''बौद्ध धर्म के शैक्षिक चिंतन एवं नैतिक मूल्यों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता – एक अध्ययन''

शोध प्रबन्ध
कोटा विश्वविद्यालय, कोटा
की पी.एच.डी.
की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शिक्षा संकाय

शोधार्थी
मधु कुमारी वर्मा

शोध पर्यवेक्षक
प्रो. सुषमा सिंह (प्राचार्य)
जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय
सकतपुरा, कोटा

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा (राज.)
2017

Thesis Approval for Doctor of Philosophy

This thesis entitled (BODDH DHARM KE SHEKSHIK CHINTAN EVAM NETIK MULYON KA VERTMAN PARIPREKSHYA ME PRASANGIKTA- EK ADHYAYAN) by MADHU VERMA (Enrolment No ……) Submitted to the (University Department of EDUCATION / J.L.N.P.G.T.T. COLLAGE KOTA Center/Research Center), University of Kota, Kota is approved for the award of Degree or Doctor of Philosophy.

Examiners

……

……

……

Supervisor (s)

……..

……..

……..

Date:……

Place:……

Certificate to Accompany The Thesis

It is certified that the:-

1. Thesis entitled'' **बौद्ध धर्म के शैक्षिक चिंतन एवं नैतिक मूल्यों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता – एक अध्ययन**'' ("BODDH DHARM KE SHEKSHIK CHINTANEVAM NETIK MULYON KA VERTMAN PARIPREKSHYA ME PRASANGIKTA – EK ADHYAYAN") by **MRS. MADHU KUMARI VERMA** is an Original piece of research work carried out by the candidate under my supervision.
2. Literary presentation is satisfactory and the thesis is in a form suitable for publication.
3. Work enhances the capacity of the candidate for critical examination and independent judgement.
4. Candidate has put in at least 200 days of attendance every year.

Signature of Supervisor
With date

Candidate's Declaration

I hereby certify that the work Which is being presented in the thesis .entitled **BODDH DHARM KE SHEKSHIK CHINTAN EVAM NETIK MULYON KA VERTMAN PARIPREKSHYA ME PRASANGIKTA- EK ADHYAYAN** in partial fulfillment of the requirement for the award of the Degree of Doctor of philosophy .carried under the supervision of professor /**Dr.SHUSHMA SINGH** and submitted to the university department of education /university J.L.N.P.G.T.T. collage kota / research center .university of kota,kota represents my ideas in my own words and where others ideas or words have been included .I have adequately cited and referenced the original sources .the work presented in this thesis as not been submitted elsewhere for the award of any other degree of diploma from any institutions .I also declare that I have adhered to all principles of academic honesty and integrity and have not misrepresented or fabricated or falsified any idea/ data /fact/source in my submission .I understand that any violation of the above will be cause for disciplinary action by the university and can also evoke penal action from the sources which have thus not been properly cited or from whom proper permission has not been taken when needed.

_____
Signature

_____
(Name of the student)

_____
(Roll no.)

Date:-

This is to certify that the above statement made MADHU VERMA (enrolment no……) is correct to the best of my knowledge.

Date:-

(Research supervisor (s))
(University Department of Education /University (Center/ Research Center)

आभार प्रदर्शन

शिक्षा विकास का वह क्रम है जिसके द्वारा मनुष्य स्वयं को विभिन्न रूपों मे आवश्यकतानुसार भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेता है। हमें शिक्षा द्वारा ही कभी असफल न होने वाली सूझ मिलती है। यह हमें मोक्ष की ओर ले जाती है एवं सांसारिक जीवन में हमें सब ओर प्रगति एवं सम्पन्नता प्रदान करती है। शिक्षा भ्रम का निवारण करती है। हमारी कठिनाईयों को दूर करती है और यथार्थ के जीवन मूल्यों को प्राप्त करने में सहयोग प्रदान करती है।

परमपिता परमात्मा की असीम अनुकम्पा एवं पूजनीय माता–पिता एवं श्रद्वेय गुरूजनों की कृपा दृष्टि के परिणाम स्वरूप ही मेरी रूचि सदैव शिक्षा के क्षैत्र मे बनी रही है। इसी लगन एवं परिश्रम का परिणाम है – पी.एच.डी. की उपाधि हेतु यह शोध।

प्रस्तुत शोध कार्य के विषय चयन और लेखन मे मैं सुयोग्य विद्वान प्रो. सुषमा सिंह, प्राचार्य, जवाहर लाल नेहरू शिक्षक प्रशिक्षण स्नातकोत्तर महाविद्यालय की आजन्म ऋणी रहुंगी, जिन्होनें प्रारम्भ से अन्त तक इस कार्य को पूर्ण करने में अपना अमूल्य समय एवं सहयोग देकर मेरा पथ प्रदर्शन किया। साथ ही मैं आभारी हूँ इस महाविद्यालय परिवार एवं पुस्तकालय का, जिसके सहयोग से जो रूप इस शोध प्रबन्ध को मिला है–हृदय से उनका आभार प्रकट करती हूँ। मैं स्वयं को कृतार्थ मानती हूँ कि मेरे परम श्रदेय पिताजी श्री मोतीलाल वर्मा एवं माताजी गुलाब देवी की वह इच्छा साकार हुई जिसमे वे चाहते थे कि मैं शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान कार्य करूं। मैं उनकी इस इच्छा का जो मेरे लिए आशीर्वाद रूप में सिद्व हुई आज आदर करती हूँ और उनके चरणों में नतमस्तक हूँ।

मैं अपने पति डॉ0 दिनेश वर्मा के प्रति किन शब्दों में आभार व्यक्त करूं। उन्होने पारिवारिक दायित्वों को निभाते हुए हर पग पर सहायता व ढांढ़स बंधाया है, जिसका यह परिणाम सामने आ सका। साथ में मेरे पूज्य

ससुर श्री उग्रसेन जी वर्मा एवं सास कंचन देवी जी का शुभ आर्शिवाद है जिससे यह कार्य पूर्ण हो सका है। क्योंकि में इस ऋण से मुक्त नहीं होना चाहती तथा अपने पुत्र शिशु प्रत्यक्ष वर्मा के स्नेह से आहाद्वित हूँ, जो मुझे अध्ययनरत देखकर चुपचाप मेरे पास बैंठ जाता था तथा किसी तरह का व्यवधान उपस्थित नहीं करता था। यह शोध कार्य मात्र मेरा अपना प्रयास मात्र नहीं है वरन् श्रद्वेय मेरे बन्धुजन, मेरी बहनें, मेरा सम्पूर्ण परिवार, विद्वजनों एवं अध्यापको के सहयोग का परिणाम है। मैं उन सभी के प्रति अपना हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ। जिन्होने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से मुझे इस कार्य में सहयोग प्रदान किया है एवं अपनी वात्सल्यपूर्ण वाणी से सदैव प्रोत्साहित कर मुझे इस कार्य को बढ़ाने के लिए नई चेतना प्रदान की है।

अन्त में मैं अग्रज सुशील शर्मा एवं प्रदीप पांचाल का भी आभार व्यक्त करना अपना परम कर्तव्य समझती हूँ। जिन्होने मेरे इस शोध प्रबन्ध को कम्प्यूटरीकृत करने मे सहायता की। परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करती हूँ कि जिन्होने इस शोध प्रबन्ध की तैयारी मे सहायता दी है, उनके प्रति सिवाय कृतज्ञता ज्ञापित करने में समर्थ हूँ। वे सर्वविधि कल्याण करें तथा स्वस्थ एवं प्रसन्न रहें।

मेरा यह प्रयास आपके समक्ष है शिक्षा जगत को जो भी इसके द्वारा यदि लाभ हो सकेगा तो मैं स्वयं को धन्य समझूंगी।

शोधार्थी

मधु कुमारी वर्मा

विषय–सूची

प्रथम अध्याय–समस्या और उसकीपृष्ठभूमि		पृ.सं.	1–51
1.1	परिचय	पृ.सं.	1–3
	1.1.1 नैतिकमूल्य का परिभाषीकरण एवं आवश्यकता		3–30
1.2	वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व	पृ.सं.	30–33
1.3	शोध समस्याका औचित्य	पृ.सं.	33–36
1.4	शोध समस्या का कथन	पृ.सं.	36
1.5	शोध समस्या का उद्देश्य	पृ.सं.	37
1.6	शोध विधि	पृ.सं.	37–40
	1.6.1 प्राथमिक स्त्रोत		38–40
	1.6.2 गौण स्त्रोत		40
	1.6.3 तृतीयक स्त्रोत		40
1.7	शोध का सीमांकन	पृ.सं.	40–42
1.8	सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता	पृ.सं.	42–43
1.9	समस्या से सम्बन्धित शोध प्रबन्ध काविवरण	पृ.सं.	43–51
	1.9.1 भारतमेंहोनेवाले शोध कार्य		44–49
	1.9.2 विदेशोंमेंहोनेवाले शोध कार्य		49–51
द्वितीय अध्याय–बौद्ध दर्शन का संक्षिप्त परिचय		पृ.सं.	52–68
2.1	चिंतक के जीवन कादर्शन	पृ.सं.	52–55
2.2	बौद्ध शिक्षादर्शन के सिद्धान्त	पृ.सं.	56–68
तृतीय अध्याय–बौद्ध दर्शन का शैक्षिक चिन्तन		पृ.सं.	69–83
3.1	बौद्ध दर्शनका शैक्षिक चिन्तन	पृ.सं.	69–73
	3.1.1 चार आर्य सत्य		69–71
	3.1.2 अष्ठांग मार्ग		71–74
3.2	राष्ट्रबोध–बौद्ध दर्शन एवं संविधान	पृ.सं.	75–77
3.3	बौद्ध दर्शन की शैक्षिकविचारधारा	पृ.सं.	77–83

चतुर्थ अध्याय–बौद्ध दर्शन का स्वरूप		पृ.सं.	84–120
4.1	बौद्ध दर्शन का मींमासात्मक स्वरूप (ज्ञान मीमांसा)	पृ.सं.	84–87
4.2	बौद्ध शिक्षा के मूल्य	पृ.सं.	88–91
4.3	बौद्ध नीतिशास्त्र	पृ.सं.	91–96
4.4	बौद्ध का मनोविज्ञान	पृ.सं.	96–120
	4.4.1 परिचय		96–97
	4.4.2 बौद्ध विज्ञान		97–102
	4.4.3 बौद्ध विज्ञान और पाश्चात्य विज्ञान		102–104
	4.4.4 बौद्ध मनोविज्ञान		104–120
पंचम अध्याय–बौद्ध के शिक्षा संबंधी विचार		पृ.सं.	121–142
5.1	बौद्ध शिक्षा के उद्देश्य	पृ.सं.	121–123
5.2	शिक्षा का पाठ्यक्रम	पृ.सं.	124–129
5.3	छात्रों की स्थिति	पृ.सं.	129–133
5.4	अध्यापक की स्थिति	पृ.सं.	133–138
5.5	प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा	पृ.सं.	139–142
षष्ठम अध्याय–बौद्ध दर्शन की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में प्रासंगिकता		पृ.सं.	143–151
6.1	शोध का संक्षिप्त विवरण	पृ.सं.	143–144
6.2	निष्कर्ष	पृ.सं.	145–146
6.3	सुझाव	पृ.सं.	147–151
	6.3.1 निष्कर्षो के आधार पर सुझाव		147–150
	6.3.2 भावी अध्ययन के लिए सुझाव		151
परिशिष्ट–संदर्भ ग्रंथ सूची		पृ.सं.	152–170

1. आधुनिक ग्रंथ सूची
2. मौलिक ग्रंथ सूची
3. अंग्रेजी ग्रंथ सूची
4. इन्टरनेट पत्र–पत्रिकाऐं एवं जनरल्स
5. सर्वे एवं डिक्शनरी

संलग्न : –प्रकाशित लेख

प्रथम अध्याय

समस्या और उसकी पृष्ठभूमि

1.1 परिचय–शिक्षा मनुष्य के सम्यक विकास के लिए उसके विभिन्न ज्ञान तंतुओं को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया है। इसके द्वारा व्यष्टि, समाज और राष्ट्र सभी का विकास होता है। शिक्षा के प्रसार से समाज की सांस्कृतिक प्रगति तथा आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो जाता है शिक्षा के प्रसार से ही समाज में न्याय, स्वतंत्रता तथा शांति जैसे आदर्शो को विकसित किया जा सकता है। अतः शिक्षा आधुनिक जीवन प्रणाली का सबसे प्रमुख साधन है, जिसके माध्यम से व्यक्ति ज्ञान का संचय करता है।

नीति शास्त्र की उक्ति है– ''ज्ञानेन हीना :पशुभि : समाना :। '' अर्थात ज्ञान से हीन मनुष्य पशु के तुल्य है। ज्ञान की प्राप्ति शिक्षा या विद्या से होती है। दोनों शब्द पर्यायवाची है।'' शिक्ष् धातु से शिक्षा शब्द बना है, जिसका अर्थ है– विद्या ग्रहण करना। विद्या शब्द 'विद' धातु से बना है, जिसका अर्थ है ज्ञान पाना। ऋषियों की दृष्टि में विद्या वही है जो हमे अज्ञान के बंधन से मुक्त कर दें– 'सा विद्या या विमुक्तये।''

भगवान श्री कृष्ण ने गीता में 'आध्यात्म विद्यानाम' कहकर इसी सिद्धांत का समर्थन किया है। शिक्षा की प्रक्रिया युग सापेक्ष होती है। युग की गति और उसके नए–नए परिवर्तनों के आधार पर प्रत्येक युग में शिक्षा की परिभाषा और उदेश्य के साथ ही उसका स्वरूप भी बदल जाता है।

यह मानव इतिहास की सच्चाई है। मानव के विकास के लिए खुलते नित–नए आयाम शिक्षा और शिक्षाविदो के लिए चुनौती का कार्य

करते है। जिसके अनुरूप ही शिक्षा की नयी परिवर्तित परिवर्धित रूप रेखा की आवश्यकता होती है।

शिक्षा की एक बहुत बड़ी भूमिका यह भी है कि वह आपकी संस्कृति, धर्म तथा अपने इतिहास को अक्षुण्ण बनाएं रखे जिससे की राष्ट्र का गौरवशाली अतीत भावी पीढी के समक्ष घोतित हो सके और युवा पीढ़ी अपने अतीत से कटकर न रह जाएं।

वर्तमान समय में शिक्षक को चाहिए कि सामाजिक परिवर्तन को देखते हुए उच्च शिक्षा में गुणवत्ता को बनाएं रखने के लिए केवल अक्षर एंव पुस्तक ज्ञान का माध्यम न बनाकर शिक्षित को केवल भौतिक उत्पादन–वितरण का साधन न बनाया जाए अपितु नैतिक मूल्यों से अनुप्राणित कर आत्मसंयम, इंद्रिय निग्रह, प्रलोभनो–पेक्षा तथा नैतिक मूल्यों का केन्द्र बनाकर भारतीय समाज, अंतराष्ट्रीय जगत की सुख–शान्ति और समृद्धि को माध्यम तथा साधन बनाया जाएं।

असतोंष, अलगाव, उपद्रव, आंदोलन, असमानता, असामंजस्य, अराजकता, आदर्श विहिनता, अन्याय, अत्याचार, अपमान, असफलता, अवसाद, अस्थिरता, अनिश्चितता, संघर्ष, हिंसा यही सब घेरे हुए है आज हमारे जीवन को। व्यक्ति में एंव समाज में सम्प्रदायिकता, जातीयता, भाषावाद, क्षैत्रीयतावाद, हिंसा की संकीर्ण कुत्सित भावनाओं व समस्याओं के मूल में उत्तरदायी कारण है मनुष्य का नैतिक और चरित्र पतन अर्थात नैतिक मूल्यों का क्षय एंव अवमूल्यन।

नैतिकता का संबंध मानवीय अभिवृत्ति से है, इसलिए शिक्षा से इसका महत्वपूर्ण अभिन्न एंव अटूट संबंध है कौशलों व दक्षताओं की अपेक्षा अभिवृति–मूलक प्रवृतियों के विकास मे पर्यावरणीय घटकों का विशेष योगदान होता है। यदि बच्चों के परिवेश में नैतिकता के तत्व पर्याप्त रूप से उपलब्ध नही है तो परिवेश में जिन तत्वों की प्रधानता होगी वे जीवन का अंश बन जाएगें। इसीलिए कहा जाता है कि मूल्य पढ़ाये नही जाते, अभिग्रहीत किए जाते हैं।

देश की सबसे बड़ी शैक्षिक संस्था–राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एंव प्रशिक्षण परिषद के द्वारा उन मूल्यों की एक सूची तैयार की गई है इस सूची में उप मूल्यों को सम्मिलित किया गया है। आधुनिक जीवन में नैतिक मूल्यों की आवश्यकता, महत्व, अनिवार्यता व अपरिहार्यता को इस बात से सरलता व संक्षिप्तता में समझा जा सकता है कि संसार के दार्शनिकों, समाज शास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों ,शिक्षा शास्त्रियों, नीतिशास्त्रियों ने नैतिकता को मानव के लिए एक आवश्यक गुण माना है।

1.1.1 नैतिक मूल्य–

नैतिक मूल्य बालकों में शिक्षा के माध्यम से विकसित किये जा सकते है। ये नैतिक मूल्य ही बालक के विकास को महत्त्वपूर्ण दिशा प्रदान करते है। ये बालक की जीवन की रूपरेखा को ही परिवर्तित कर देते है। जीवन की सफलता का आधार शिक्षा में ही निहित रहता है। और नैतिक मूल्यों को विकसित करने का सबसे प्रभावशाली केन्द्र विद्यालय को ही माना जाता है। अतः नैतिक मूल्य सम्पूर्ण शिक्षा की नींव होती है। और यह कोई एक या दो प्रयासों या प्रयत्नों से ही नहीं आती या यह कोई सैद्धांतिक चर्चा करने से नहीं आती और न ही यह केवल शिक्षा में नैतिक पक्ष को शामिल कर नैतिक शिक्षा बालकों को कक्षा–कक्ष में पढ़ाने से आती है वरन् यह तो जीवन की प्रारम्भिक अवस्था से प्रारम्भ किये गए प्रयासों के जीवन की निरन्तरता में शामिल घटनाओं व अनुभवों के सहयोग देने से प्रारम्भिक अवस्था पर प्रदान की गई शिक्षा से आते है। नैतिक मूल्य जीवन की महत्त्वपूर्ण धरोहर होते है।

नैतिक

नीति शब्द में 'इक' प्रत्यय लगने से नैतिक शब्द बना है। 'नीति' शब्द का अभिप्राय– ले जाने की क्रिया, पथ प्रदर्शन, चाल–चलन, शील,

उपाय, आचार, पद्धति, लोक या समाज के लिए निर्दिष्ट किया हुआ आचार व्यवहार।

अंग्रेजी में 'नीति' शब्द का अनुवाद 'Moral' है। अंग्रेजी शब्द 'Moral' लेटिन भाषा के शब्द 'Mores' से लिया गया है। जिसका अभिप्राय है – रीति–रिवाज और आदतें।

नैतिकता

नैतिकता के दो स्पष्ट अर्थ है– प्रथम तो यह कि वो आचरण व व्यवहार जो सामाजिक सन्दर्भ में हो और दूसरा उचित मूल्यों एवं आदर्शो का अनुशीलन एवं प्राप्ति हेतु किया गया प्रयत्न। प्रथम के अनुसार– प्रथा, परम्परा और अवस्था के अनुसार किया जाने वाला व्यवहार व आचरण तथा द्वितीय के अन्तर्गत– उच्च लक्ष्यों एवं आदर्शो यथा राष्ट्रीय भावना, ईमानदारी, उदारता, वफादारी एवं सहिष्णुता इत्यादि को स्वयं में श्रेष्ठ लक्ष्य एवं साध्य समझते हुए तदनुसार आचरण करना, चाहे समाज तथा सामाजिक व्यवस्था एवं परम्पराओं से सीधा सम्पर्क एवं तादात्म्य हो अथवा विरोधाभास। इनका प्रस्फुटन बालक में स्वतः ही उनके विकास काल में होता रहता है।

नैतिकता के अन्तर्गत हम सामान्यतया परोपकार, कर्त्तव्य, सत्य, अहिंसा, आदर इत्यादि प्रकार के चारित्रिक गुणों को ले सकते है। जिस व्यक्ति में नैतिक गुण नहीं उसका नैतिक चरित्र नहीं। नैतिक चरित्र के निर्माण के लिए व्यक्ति के मूल प्रवृत्यात्मक संवेग जितने सुसंगठित तथा नैतिक गुणों के स्थायी भाव जितने अधिक होंगे उसका चरित्र उतना ही सुदृढ़ होगा। वस्तुतः ''नैतिकता तो एक आचारसंहिता है जो मनुष्य को अपने ज्ञान से कर्त्तव्याकर्त्तव्य का निर्णय करके धर्म के प्रति आकृष्ट और अधर्म से विरत रहने की प्रेरणा देते है।''

डॉ. रिकमेन – डॉ. रिकमेन ने अपनी पुस्तक 'ईयर बुक ऑफ एजुकेशन' (1912) में यह विचार व्यक्त किया कि – ''नैतिकता के सम्बन्ध में छोटे रास्ते न तो छोटे होते है और न नैतिक। नैतिकता किसी में उपजाई नहीं जा सकती है वरन् यह तो अपने ढंग से तथा अपने समय से ही विकसित होती है। नैतिकता व्यवहार के किसी स्तर के अनुसार व्यवहार करना नहीं है, यह तो हमारे मस्तिष्क में स्थापित अच्छे सम्बन्धों की, जिन्हें हम सभी के व्यवहारों तथा कार्यो में देखते हैं इस सब की अभिव्यक्ति है।''

नैतिकता की परिभाषा देते हुए समाजशास्त्री **मेकाईवर एवं पेज** ने कहा है कि– ''वास्तविक रूप में नैतिकता नियमों का वह समूह है जिसके द्वारा व्यक्ति का अन्तःकरण सत्य–असत्य का ज्ञान करता है।''

प्रो. के. डेविड के अनुसार, ''नैतिकता कर्त्तव्य की वह आन्तरिक भावना है जिसमें उचित–अनुचित का विवरण सन्निहित हो।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट है कि मानवीय जीवन समस्त जगत का 'सिरमौर' है और मानवीय जीवन बिना नैतिकता के समावेश के सम्भव नहीं है। अगर यह कहा जाए तो अतिश्योक्ति नहीं होगी कि नैतिकता ही मानवता है। मानवीय मूल्य बिना नैतिकता के सम्भव नहीं है। नैतिकता के बिना न तो बालक में मानवीय मूल्य विकसित किये जा सकते हैं और न ही उसे मानव बनाया जा सकता है।

मूल्य

मूल्य किसी भी समाज में प्रचलित वे आदर्श एवं लक्ष्य होते है जिनके प्रति सदस्य श्रद्धा रखते है और जिन्हें सामाजिक जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाता है। इन महत्वपूर्ण मानदण्डों के आधार समाज में विशिष्ट वस्तुओं, घटनाओं और व्यक्तिगत व्यवहारों का मूल्यांकन किया जाता है। मूल्य का स्पष्ट करते है थामस एवं जानेपी ने कहा है कि किसी भी वस्तु

को मूल्य कहा जा सकता है जिसका मूल्यांकन किया जाता हो और जिसका किसी सामाजिक समूह के सदस्यों के लिए कोई अर्थ हो, इसी प्रकार रियूटर तथा हार्ट के अनुसार समाज में अस्तित्व के लिए संघर्ष तथा स्पर्द्धा होती है परिणामस्वरूप एक निश्चित व्यवस्था तथा नैतिक चेतना पूर्ण होकर विकसित होती है। मूल्यों के विकास का वस्तुतः यही आधार है।

मूल्य का अर्थ एवं परिभाषा

मूल्य शब्द को अंग्रेजी में 'वेल्यू' कहते है। 'वेल्यू' शब्द को संस्कृत में 'इष्ट' के रूप में प्रयुक्त करते है। इष्ट से तात्पर्य है ''जो इच्छित है'' अर्थात् व्यक्ति अपनी इच्छाओं की सन्तुष्टि हेतु प्रयास करता है। ज्ञान इस प्रयास का मार्ग प्रशस्त करता है और ज्ञान के आधार पर चेतनावस्था में की गयी इच्छाओं की तुष्टि या प्राप्त किये गए लक्ष्य से ही मूल्य शब्द को अभिहित किया जा सकता है। मूल्य एक गुण है जो किसी वस्तु के अमूर्त रूप से होता है। मूल्य बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं और उनको पाने के लिए व्यक्ति व समाज अपना पूर्ण प्रयास करते है। अर्बन के अनुसार – मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं की पूर्ति करता है। जैम्स वार्ड के अनुसार, ''मूल्य इच्छाओं की सन्तुष्टि करने वाली वस्तुएँ है। इच्छा की पूर्ति से सुख प्राप्त होता है इसलिए सुखानुभूति में मूल्य की अनुभूति है।''

मूल्य सामाजिक लक्ष्यों, आदर्शो आदि को कह सकते है, क्योंकि इनके द्वारा सामाजिक परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जा सकता है। जॉनसन के शब्दों में, ''मूल्य को सांस्कृतिक या व्यक्तिगत अथवा मापदण्ड के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके द्वारा वस्तुओं की सापेक्ष दृष्टि से तुलना की जाती है, उन्हें स्वीकृत या अस्वीकृत किया जाता है, सापेक्ष दृष्टि वांछित या अवांछित, कम या अधिक सही माना जाता है।''

आलपोर्ट के अनुसार, ''व्यक्ति की रूचि का सापेक्षिक महत्व अथवा व्यक्तित्व की प्रबल इच्छा 'मूल्य' कहलाता है।''

आक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, ''मूल्य मानव इच्छाओं की सन्तुष्टि करने वाली वस्तुएँ है इच्छा की पूर्ति से सुख होता है इसलिए सुखानुभूति में मूल्य की अनुभूति है।''

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार, ''मूल्य शब्द वस्तुतः नीति शास्त्रिय वैल्यू का पर्यायवाची है।''

टी.वी. कुननकाल के विचारों में, ''मनुष्य को जब कभी स्वतंत्रता मिलती है तब वह मूल्यों की सीमाओं में रहकर वरीयता के आधार पर कार्य करता है। इस प्रकार मूल्य व्यक्ति के जीवन को दिशा निर्देशित करके महत्वपूर्ण आयाम प्रदान करते है। मूल्य एवं मानवीय व्यवहार मनुष्य को दिशा–निर्देशित कर उसके अस्तित्व में सार्थकता लाते है वे उस केन्द्रिय धुरी का निर्माण करते है जिनके आसपास मनुष्य अपनी इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं और जीवन की गुत्थियों को व्यक्त करते है। मूल्य मनुष्य को एक नाम तथा विशेष चरित्र प्रदान कर उसके विशेष व्यक्तित्व का निर्माण करते है।''

रोबिन एम. विलियम (1968) के अनुसार, ''मूल्य एक व्यक्ति के लिए उत्प्रेरणा या प्रगति के बडे स्त्रोत है तथा निर्णय लेने के मूल स्तम्भ बनते है।''

सारांशतः मूल्य वे आदर्श है जिसको मानव दिन–प्रतिदिन अपने व्यवहार में लाता है तथा समाजीकरण की प्रक्रिया का आधार स्वीकार करता है।

मूल्य के दृष्टिकोण

1. **आध्यात्मिक दृष्टिकोण** –यह दृष्टिकोण सुख को मूल्य का मानदण्ड न मानकर आन्तरिक एवं साध्य मूल्य को ही मूल्य मानता है और साधन मूल्यों को गौण मानता है।
2. **दार्शनिक दृष्टिकोण** –मैकेन्जी ने सुख को भली प्रकार मूल्य की अनुभूति के रूप में बताया है।
3. **समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण** –पारसन्स के अनुसार मूल्य किसी भी समाज व्यवस्था के विभिन्न आरिएन्टेशन्स में से एक के चयन का मापदण्ड है।

   काने ने इसे और स्पष्ट कर मूल्यों को वह आदर्श, विश्वास तथा मानव माना है जिन्हें समाज या समाज का बहुमत प्राप्त होता है।
4. **पाश्चात्य एवं भारतीय दार्शनिक दृष्टिकोण** – भारत में की गई प्रेयस एवं श्रेयस की चर्चा पाश्चात्य जगत में नहीं मिलती। यहीं से पाश्चात्यों के सुख की अवधारणा से हमारी अवधारणा भिन्न हो जाती है।

   भारतीय दृष्टिकोण की दृष्टि से मानव, ज्ञान एवं विवेकयुक्त प्राणी है – इसलिए इसके ज्ञानमुक्त पक्ष से सम्बन्धित दो ही मूल्य प्रमुख है, एक 'धर्म' और दूसरा 'मोक्ष' जो कि आध्यात्मिक मूल्य है।
5. **आदर्शवादी दृष्टिकोण** – आदर्शवादी दार्शनिकों की दृष्टि से मूल्य निरपेक्ष है, शाश्वत है। देश, काल इत्यादि से उनके स्वरूप में परिवर्तन नहीं होता इन्होंने इन मूल्यों को सत्यं, शिवम् एवं सुन्दरम् के नाम से अभिहित किया है। भारत में जिन्हें आध्यात्मिक मूल्यों की संज्ञा दी है – धर्म एवं मोक्ष, इन्हें ही आधुनिक शब्दावली में सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् कहा जाता है।

उपर्युक्त दृष्टिकोणों के अनुसार मूल्य वे मानदण्ड है जो कि किसी समाज में उपलब्ध वैकल्पिक साधन तथा लक्ष्यों में से उपयुक्त साधन तथा लक्ष्य चुनने में सहायता करते है तथा मानव व्यवहार का निर्धारण करते है।

मूल्यों का वर्गीकरण

मूल्यों को अनेक प्रकार से वर्गीकृत करने हेतु अनेक विचारकों ने प्रयत्न किए है परन्तु मूल्यों का कोई व्यापक वर्गीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया है।

1. पेरी के अनुसार –

पेरी के सामाजिक मूल्य

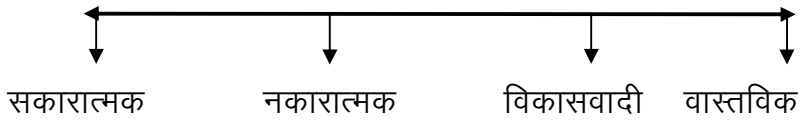

2. स्प्रैंगलर के अनुसार –

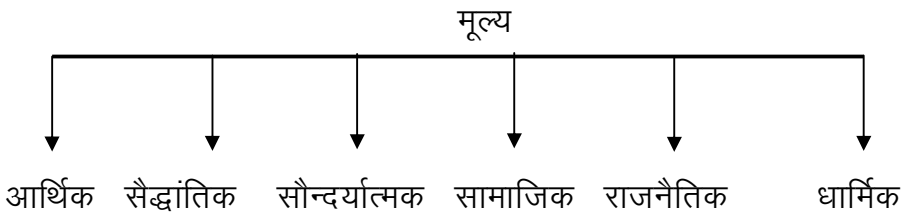

3. अर्बन के अनुसार –

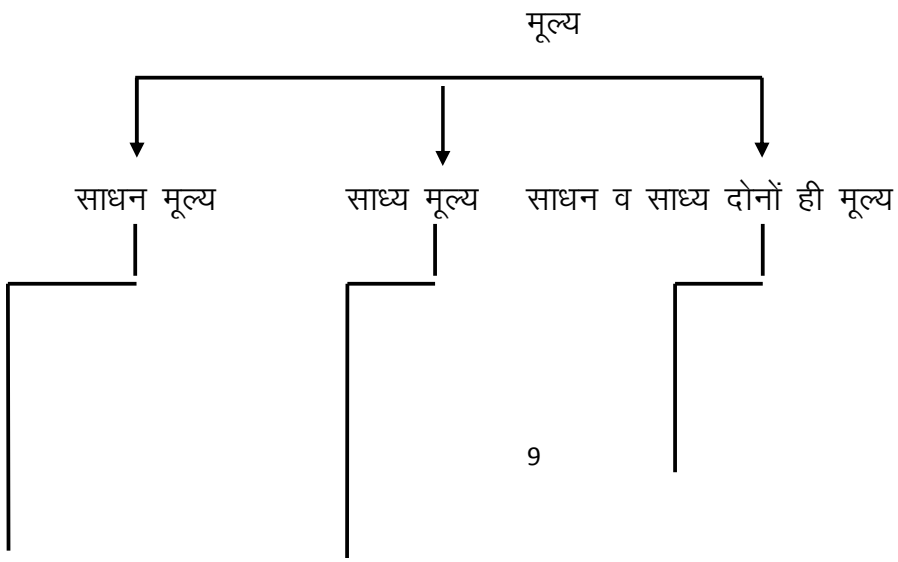

→ शारीरिक मूल्य → बौद्धिक मूल्य → चरित्र मूल्य

→ आर्थिक मूल्य → धार्मिक मूल्य → साहचर्य मूल्य

→ मनोरंजनात्मक मूल्य → सौन्दर्यात्मक मूल्य

4. **वाल्टर जी. ऐविरिट के मूल्यों का वर्गीकरण**– वाल्टर जी. एविरिट ने अपनी पुस्तक 'Moral Values' में मानवीय मूल्यों का वर्गीकरण आठ वर्गो में किया है –

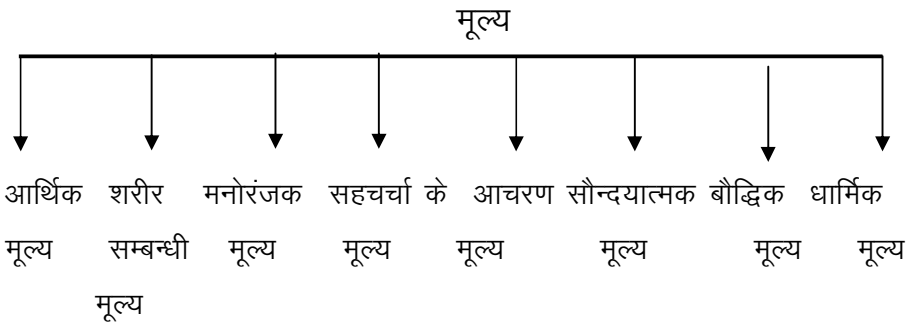

5. **सी. गेलाइटली के अनुसार –**

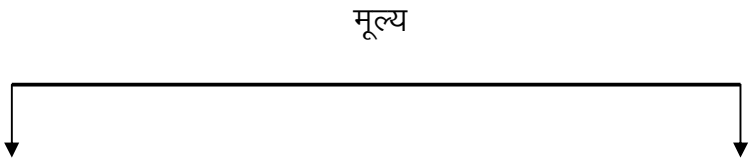

6. **वी.एन. रेड्डी के अनुसार –** वी.एन.के. रेड्डी ने अपनी पुस्तक ' मैन एजुकेशन एण्ड वेल्यूज' में तीन प्रकार के मूल्यों का वर्णन किया है– (1) भौतिक मूल्य, (2) आर्थिक मूल्य, (3) मनोवैज्ञानिक मूल्य

भारतीय मतानुसार मूल्यों का वर्गीकरण

भारतीय मतानुसार मूल्यों को निम्न भागों में सामान्यतः वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. आर्थिक एवं सामाजिक मूल्य
2. राजनैतिक मूल्य
3. आध्यात्मिक (धार्मिक) मूल्य
4. नैतिक मूल्य
5. सौन्दर्यात्मक मूल्य

उपरोक्त मूल्य हमारे 'जीवन मूल्य' भी कहे जाते हैं। ये व्यक्ति के जीवन का आधार होते है। जीवन मूल्यों की संख्यायें इतनी अधिक है कि उनका समग्र विवेचन कर पाना सम्भव ही नहीं है। परन्तु इनमें यह प्रयास करना चाहिए कि हमारे देश और समाज की उन्नति के साथ–साथ हमारी परम्पराएँ व सांस्कृतिक धरोहर भी सुरक्षित रहे।

नैतिक –मूल्य से तात्पर्य

नैतिक मूल्यों से तात्पर्य उन मूल्यों से है जिन्हे मानवीय व्यवहारों से सम्बन्धित करने पर जीवन उज्जवल तथा उच्च बनता है एवं इन व्यवहारों को उस स्तर का बनाना जिस स्तर को संस्कृति ने मान्य किया है या जो हमारी सांस्कृतिक मान्यताओं, परम्पराओं और आदर्शो के अनुकूल हो।

अगर इसे समूह (समुदाय) के स्तर के रूप में ले तो नैतिक या अनैतिक तब है या वो है जब समुदाय अपना निर्णय स्वीकार्य या अस्वीकार्य रूप में सुनाता है कि कौन से कार्य समाज सम्मत (स्वीकार्य) या करणीय है और कौन से कार्य समाज विरोधी (अस्वीकार्य) या अकरणीय है और यदि व्यक्तिगत रूप में ले तो जब व्यक्ति समाज के नियम, परम्पराओं और रीतियों को आज्ञा के रूप में पालना करता है तो वह नैतिक है क्योंकि

एक व्यक्ति के सामने कुछ करने के लिए रास्ता खोलते है ताकि वह उचित और अनुचित का निर्णय कर सके।

नैतिक मूल्य वे सांस्कृतिक या व्यक्तिगत धारणा या आदर्श है जिसके द्वारा वस्तुओं का घटनाओं या जीवनशैली के साथ तुलना की जा सकती है। नैतिक मूल्य लक्षण या गुण कहे जा सकते है जिसके द्वारा व्यक्ति अथवा सम्पूर्ण समाज को निर्देशित किया जा सकता है।

लूमिस तथा लूमिस – ''मूल्य मानव व्यवहार के निर्धारक माने जाते है जो कि विकल्पों में से ध्येय तथा साधन चुनने के मानदण्ड के रूप में कार्य करते हैं।''

शिक्षा में नैतिकता की महत्ती आवश्यकता का पता इस बात से चलता है कि यूनान के दार्शनिकों से लेकर आज तक जितने भी विचारक हुए है, उन्होंने इस बात पर बल दिया कि – समग्र रूप में नैतिकता शिक्षा से पृथक नहीं है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने लिखा है कि – ''चरित्र के विकास में धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा महत्वपूर्ण योगदान देती है।'' महात्मा गांधी तो सदैव अपने जीवन में नैतिक शिक्षा एवं नैतिक मूल्यों के अर्जन पर जोर देते है। गांधी जी ने कहा था कि – ''मेरे लिए नैतिकता सदाचार और धर्म का ही पर्यायवाची शब्द है। नैतिकता के आधारभूत सिद्धान्त सभी धर्मो में समान है इन्हें छात्रों को निश्चित रूप से पढाया जाना चाहिए।''

स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि – ''हमें वह शिक्षा देनी चाहिए जिसमें व्यक्ति चरित्रवान बनता है और उसकी प्रतिभा व मन की शक्ति का विस्तार होता है।'' चारित्रिक मूल्यों की पहचान नैतिक मूल्यों से ही की जाती है।नैतिक शिक्षा वर्तमान समय की पहली आवश्यकता है। आज का मनुष्य अधिक से अधिक सुख–सुविधाओं को जुटाने में लगा हुआ है जिसके लिए वह घृणित से घृणित व अनैतिक से अनैतिक कार्य करने में भी संकोच नहीं करता है जिससे उसमें भटकाव की स्थिति उत्पन्न हो

गयी है आज विद्यार्थियों का मूल लक्ष्य ज्ञानोपार्जन न रहकर मात्र डिग्री प्राप्त करना ही रह गया है। इसके लिए किसी भी प्रकार का तरीका क्यों न अपनाया जाय? इन सब के पीछे मूल कारण नैतिकता का अभाव ही है। विद्यार्थी पग–पग पर अनैतिकता का आचरण करते है। उनमें माध्यमिक स्तर पर सबसे अधिक झूठ बोलने की प्रवृत्ति पैदा होती जा रही है। वे घर से तो विद्यालय के लिए प्रस्थान करते है लेकिन विद्यालय तक पहुँचते ही नहीं है और अध्यापक तथा अभिभावकों को गुमराह करते हैं। अर्थात् आज का विद्यार्थी विभिन्न विरोधों एवं भ्रमों में खोया हुआ है, वे शाब्दिक रूप से जो बात करते है, व्यवहार में अलग कार्य करते है, वे स्वकेन्द्रिय हो गये है और उच्च संस्कारों व मानवीय गुणों से दूर हो गये है। इन सभी के मूल में नैतिक मूल्यों का अभाव ही परिलक्षित हो रहा है।

नैतिक मूल्य का उद्देश्य व्यक्ति को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, औपचारिक और अनौपचारिक रूप से शाश्वत और सामयिक मूल्यों की शिक्षा प्रदान करता है। **प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा निदेशालय बीकानेर, राजस्थान** के ''नैतिक शिक्षा उपागम'' नामक प्रकाशन में 32 मूल्यों को बताया है, ये 32 मूल्य इस प्रकार है –

1.	सच्चाई	2.	सहयोग
3.	साहस	4.	परोपकार
5.	सहानुभूति	6.	प्रेम
7.	दृढ़निश्चय	8.	क्षमता
9.	मित्रता	10.	सादगी
11.	निर्भिकता	12	अनुशासन
13.	दान	14.	दया
15.	धैर्य	16.	सहिष्णुता
17.	तत्परता	18.	आत्मविश्वास
19.	कर्त्तव्यपरायणता	20.	दूसरों का आदर

21 स्वावलम्बन 22. श्रम के प्रति निष्ठा

23. त्याग की भावना 24. दूसरों के गुणों की प्रशंसा

25. समाज सेवा की भावना 26. फिजुलखर्ची न करना

27. आवश्यकता से अधिक संग्रहण न करना

28. आज्ञापालन 29. शिष्टाचार

30. स्वच्छता 31. ईमानदारी

32. सहनशीलता।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद, नई दिल्ली ने शिक्षा में सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों पर दस्तावेज में 83 मूल्यों को बताया है। ये मूल्य इस प्रकार है –

1. दूसरों के सांस्कृतिक मूल्यों की सराहना

2. अस्पृश्यता विरोध 3. नागरिकता

4. दूसरों की चिन्ता 5. दूसरों का ध्यान रखना

6. सहयोग 7. सामान्य अच्छा

8. प्रजातांत्रिक 9. व्यक्ति की महत्ता

10. शारीरिक कार्य का सम्मान 11. साथी भावना

12. अच्छे आचरण 13. राष्ट्रीय समाकल

14. आज्ञापालन 15. समय का सदुपयोग

16. ज्ञान की खोज 17. समय

18. करूणा 19. सामान्य लक्ष्य

20. शिष्टाचार 21. भक्ति

22. स्वास्थ्यकर जीवन 23. अखण्डता

24. शुचिता 25. निष्कपटता

26. आत्मनियन्त्रण 27. साधन सम्पन्नता

28. नियमितता 29. दूसरों का सम्मान

30. वृद्धावस्था का सम्मान
31. सादा जीवन
32. सामाजिक न्याय
33. स्वानुशासन
34. स्व–सहायता
35. स्व–सम्मान
36. आत्मविश्वास
37. स्व–समर्थन
38. स्वाध्यान
39. आत्मनिर्भरता
40. आत्मनियन्त्रण
41. समाज सेवा
42. मानव जाति की एकात्मकता
43. अच्छे व बुरे में विभेद का भाव
44. सामाजिक उत्तरदायित्व का भाव
45. स्वच्छता
46. साहस
47. जिज्ञासा
48. धर्म
49. अनुशासन
50. सहनशीलता
51. समानता
52. मित्रता
53. वफादारी
54. स्वतंत्रता
55. दूरदर्शिता
56. सज्जनता
57. कृतज्ञता
58. ईमानदारी
59. सहायता
60. मानवतावाद
61. न्याय
62. सत्यता
63. सहिष्णुता
64. सार्वभौमिकता सत्य
65. सार्वभौमिक प्रेम
66. राष्ट्रीय व जन सम्पत्ति का महत्व
67. पहल
68. दयालुता
69. जीवों के प्रति दया
70. धर्म परायणता
71. नेतृत्व
72. राष्ट्रीय एकता
73. राष्ट्रीय संचेतता
74. अहिंसा
75. शान्ति
76. देशभक्ति
77. समाजवाद
78. सहानुभूति

79. धर्म निरपेक्षता
80. पृच्छा भाव
81. दल भावना
82. समय की पाबन्दी
83. दल कार्य

वी.एन. रेड्डी ने अपनी पुस्तक 'मैन एजुकेशन एण्ड वेल्यूज' में तीन प्रकार के मूल्यों का वर्णन किया है– (1) भौतिक मूल्य, (2) आर्थिक मूल्य, (3) मनोवैज्ञानिक मूल्य।

ऑलपोर्ट एवं वनर्न ने मूल्यों को स्प्रेंगर के वर्गीकरण के आधार पर छः श्रेणियों में विभक्त किया है–

1. सैद्धान्तिक मूल्य
2. आर्थिक मूल्य
3. सामाजिक मूल्य
4. राजनैतिक मूल्य
5. सौन्दर्यात्मक मूल्य
6. धार्मिक मूल्य

जे.ई. टर्नर ने मूल्यों को दो भागों में विभाजित किया है –
(1) मूर्त मूल्य, (2) अमूर्त मूल्य।

गेलाइटली ने मूल्यों को दो भागों में विभाजित किया है –
(1) आवश्यक मूल्य, (2) कार्यात्मक मूल्य
डब्ल्यू. अरबन ने कहा है कि मूल्यों के निम्न रूप होते है –
(1) जैविकीय मूल्य – (अ) शारीरिक, (ब) आर्थिक, (स) मनोरंजनात्मक
(2) सामाजिक मूल्य– (अ) चरित्र (ब) साहचर्य
(3) पराजैविकमूल्य– (अ) बौद्धिक मूल्य, (ब) धार्मिक, (स) सौन्दर्यात्मक
उपरोक्त वर्गीकरण देखने के पश्चात् हम मूल्यों को व्यापक दृष्टि से निम्न वर्गो में विभाजित कर सकते हैं –

1. वैयक्तिक मूल्य – वैयक्तिक मूल्य वह है जो व्यक्ति के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्ध रखते है। इन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में व्यक्ति स्वयं को रखता है। शुचिता, सफाई, नियमितता, समय की पाबन्दी, ज्ञान की खोज व सादा जीवन आदि मूल्यों को हम इस श्रेणी में रखते हैं।

2. सामाजिक मूल्य – सामाजिक मूल्य वह है जिसमें व्यक्ति

समाज को महत्वपूर्ण स्थान देता है, इन मूल्यों में वृद्ध व्यक्तियों का सम्मान, समाज सेवा, संस्कृति का संरक्षण आदि सम्मिलित करते हैं। यह मूल्य वह होते है जिनके द्वारा व्यक्ति समाज के कल्याण की कल्पना करता है। व्यक्ति के लिए सामाजिक मूल्यों का ज्ञान होना बहुत ही आवश्यक है। चूंकि वह एक सामाजिक प्राणी है।

3. शैक्षिक मूल्य – बुद्धि का विकास, जिज्ञासा, चिन्तन आदि वह मूल्य है जिन्हें हम 'शैक्षिक' मूल्यों की श्रेणी में समाहित करते है। शिक्षा का उद्देश्य बालक की बुद्धि का विकास करना तो है ही, साथ ही वह बालक को आत्मनिर्भर भी बनाती है।

4. राजनैतिक मूल्य –देश–भक्ति, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय सचेतनता आदि वह मूल्य है जिन्हें हम राजनैतिक मूल्यों की श्रेणी में रखते हैं। इनका उद्देश्य व्यक्ति को योग्य नागरिक बनाना होता है जिससे वह अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हो सके।

5. चारित्रिक मूल्य – सदाचार, करूणा, सहानुभूति, दयालुता, सहिष्णुता आदि वह मूल्य है जो चारित्रिक मूल्य कहे जाते है इनका उद्देश्य व्यक्ति को चारित्रिक दृष्टि से ऊँचा बनाना होता है। आज के युग में इन मूल्यों का बहुत महत्व है।

6. आध्यात्मिक व धार्मिक मूल्य – भक्ति, धर्मनिरपेक्षता, सभी धर्मो का आदर करना। इसका अभिप्राय है कि व्यक्ति के अन्दर आध्यात्मिक व धार्मिक मूल्यों को समाहित किया गया है। भारत जेसे धर्म–निरपेक्ष राज्य में व्यक्ति का आध्यात्मिक व धार्मिक विकास किया जाना चाहिए। साथ ही उसके अन्दर बहुत कट्टर धार्मिक दृष्टिकोण उत्पन्न नहीं होना चाहिए।

7. सौन्दर्यात्मक मूल्य – प्रकृति–प्रेम, सुन्दरता की प्रशंसा, वनों की रक्षा आदि सौन्दर्यात्मक मूल्य है व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाती है कि वह सुन्दर वस्तु से प्रेम करे व जिस धरातल पर वह रहता है, उसे स्वच्छ व सुन्दर बनाये रखने का प्रयास करे।

भारत में नैतिक मूल्यों के विकास की आवश्यकता

भारतवर्ष में यदि हम शैक्षिक इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हम यह निःसंकोच कह सकते हैं कि विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षैत्र में भारतवर्ष ने सन्तोषजनक प्रगति की है। आज हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि भारतवर्ष ने यातायात, संचार व चिकित्सा में सन्तोषजनक उपलब्धियाँ की है। परन्तु इसके साथ ही दूसरी ओर जब हम अपनी संस्कृति व नैतिक मूल्यों पर विचार करते हैं तो हमें बहुत ही शर्म का अनुभव होता है। चूंकि नैतिकता की दृष्टि से हमारा दिन–प्रतिदिन पतन होता जा रहा है।

आज हमारे सामने बहुत ही विषम परिस्थितियाँ हैं। एक तो यह कि हमें यह पता ही नहीं कि हमारे भारतीय मूल्य क्या हैं? और इस कारण हम मूल्य अनभिज्ञ होकर व्यवहार करते जा रहे हैं। दूसरे हमें भारतीय मूल्यों का ज्ञान तो है परन्तु हम उनके प्रति आस्था नहीं रखते और मूल्य विहिन व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं। तीसरे, हमें मूल्यों का ज्ञान है और उस पर चलना हम पिछड़ेपन का प्रतीक समझते है और आधुनिकता की दौड़ में हम इतनी तीव्र गति से चलना चाहते हैं कि हमारे मूल्य उस दौड़ में लुप्त हो जाते हैं।

मूल्यपरक व्यवहार न करने पर हमें आत्मग्लानि तो अवश्य होती है परन्तु आधुनिक बनने की ललक के आगे हम घुटने टेक देते हैं। यह तीनों ही वह परिस्थितियाँ है जिन्हें हम मूल्य अन्तर्द्वन्द्व की संज्ञा दे सकते हैं। इस कारण आज हमारे लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि नैतिक शिक्षा के द्वारा छात्रों के द्वारा छात्रों को सही नैतिक मूल्यों का ज्ञान करायें।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के पैरा 8.4 और 8.5 में शिक्षा को सामाजिक और नैतिक मूल्यों के लिए एक प्रभावी उपकरण बनाने की आवश्यकता

पर प्रकाश डालते हुए मूल्यपरक शिक्षा पर काफी बल दिया है। सांस्कृतिक विविधता वाले हमारे समाज में शिक्षा को लोगों के बीच एकता तथा अखण्डता की भावना जगाने वाले सार्वभौम एवं शाश्वत मूल्यों का विकास करना चाहिए। ऐसी मूल्य शिक्षा से रूढ़िवाद, धार्मिक उन्माद, हिंसा, अंधविश्वास और भाग्यवाद को समाप्त करने में मदद मिलेगी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में कही गई उपर्युक्त बातों से स्पष्ट है कि हमारे देश की शिक्षा में मूल्यों की आवश्यकता व महत्व सबसे अधिक है। हमारी शिक्षा का हमारी संस्कृति, परम्पराओं व जीवन मूल्यों से सम्बन्ध कम होता जा रहा है। इनके अभाव के कारण ही हमारी शिक्षा वास्तविक रूप में अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर पाने में असफल हो रही है। हमारा देश आज मूल्य संकट के दौर से गुजर रहा है। चारों ओर हिंसा, साम्प्रदायिकता, अनैतिकता, दंगा व तोड़–फोड़, अव्यवस्था, आतंकवाद, अपराध प्रवृति देखने को मिल रही है। ऐसी परिस्थिति में सामान्य मन मस्तिष्क में तनाव बढ रहा है। इसका कारण मूल्यों की टकराहट ही है। इस समय हमारे देश के सामने सबसे बडा संकट मूल्यों का ह्रास होना ही है। भारतीय जन जीवन मूल्यों के प्रति उदासीन होता जा रहा है।

वर्तमान भौतिक युग में हमारे समाज के प्राचीन मूल्य प्रेम, दया, सेवा, सहयोग, करूणा आदि का तेजी से ह्रास हो रहा है। इसी कारण आज के युवा उद्देश्यहीन और अज्ञान मंजिल की ओर बढ रहा है। आज गलत मूल्यों की उपासना हो रही है। हमें हमारी संस्कृति के आधार, आध्यात्मिकता व भावात्मक एकता के मूल्यों से दूर होने के स्थान पर और भी अधिक निकट आना चाहिए। मानवीय मूल्यों के पतन को रोकने के लिए मूल्य शिक्षा की आवश्यकता बहुत अधिक है। शाब्दिक या सूचनात्मक ज्ञान के स्थान पर मूल्यों पर बल दिया जाना आवश्यक हो गया है। मूल्यों की शिक्षा से ही हम राष्ट्रीयता की भावना से जुड़ सकते हैं।

उक्त स्थिति ने आज मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता को अनुभूत कराने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। भारत के कर्णधारों ने नई शिक्षा

नीति में इस ओर अपेक्षित ध्यान दिया। इसीलिए कहा गया है – ''सभी प्रकार के विचारशील लोग मूल्यों के तेजी से हो रहे ह्रास तथा उसके परिणामस्वरूप सार्वजनिक जीवन में व्याप्त प्रदूषण से विक्षुब्ध है वास्तव में मूल्यों की यह संकटग्रस्त स्थिति जिस प्रकार जीवन के अन्य अंगों में व्याप्त है, उसी प्रकार स्कूलों कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों के छात्रों तथा शिक्षकों में व्याप्त है। इसे एक बहुत खतरनाक विकास के रूप में माना जाता है। अतः यह आग्रह किया जाता है कि शिक्षा की प्रक्रिया का पुनः अभिविन्यास किया जाय तथा युवकों को इस बात की पुनः अनुभूति करायी जाय कि इस तरह न तो शोषण, असुरक्षा तथा हिंसा को रोका जा सकता है और न ही किसी संगठन, समाज को सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक मानदण्डों को स्वीकारने योग्य बनाये रखा जा सकता है। पिछले अनुभवों से यह सीखते हुए, यह आशा की जाती है कि सुसंगत तथा व्यवहार मूल्य–प्रणाली को ऐसी प्रक्रियाओं के माध्यम से लागू किया जाये जो जीवन के प्रति तर्क–संगत, वैज्ञानिक तथा नैतिक दृष्टिकोण पर आधारित है।

धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा समिति (1959) – 1959 में भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने धार्मिक एवं नैतिक शिक्षा समिति नियुक्त की जिसके अनुसार नैतिक मूल्यों का सम्बन्ध मनुष्य के उस आचरण से है जो विभिन्न स्थितियों में मनुष्य, घर, समाज, आर्थिक क्षैत्र और बाह्म जीवन के विभिन्न क्षैत्रों से है।

इनसे छात्रों में उचित आचरण हेतु निम्न सुझाव दिये –

1. शिक्षा के प्रत्येक कार्यक्रम में परिवार को उचित महत्व दिया जाये व उसके दोषों का उन्मूलन किया जाये।
2. विश्वविद्यालय का दैनिक कार्य ईश विनय से प्रारम्भ किया जाये।
3. प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक पाठ्यक्रम में कुछ ऐसे ग्रंथ रखे जाये जो छात्रों को धार्मिक मूल्यों का ज्ञान दे।

4. शिक्षा द्वारा अच्छे आचरण की बातों पर प्रबलता दी जाये व इसी आधार पर छात्रों का मूल्यांकन हो।
5. समाज सेवा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का अभिन्न अंग हो।
6. छात्रों में वाद–विवाद, स्वतंत्र चिन्तन एवं आलोचनात्मक चिन्तन के गुणों का विकास किया जाये।
7. विद्यालय में विभिन्न धर्मो के उत्सवों का सामूहिक आयोजन हो जिसके द्वारा छात्रों में वांछनीय नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य विकसित हो सके।

नैतिक मूल्यों के विकास में अध्यापक का कर्त्तव्य –

1. **पेस्टालॉजी** ने स्कूल को 'प्यार का घर' कहा है। इस कारण अध्यापक का यह उत्तरदायित्व है कि बालक की स्वाभाविक रूचियों को समझे व उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करे।
2. शिक्षक को अभिभावकों से सम्पर्क स्थापित करना चाहिए तथा उनके साथ मधुर सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए चूँकि बालक के सम्पूर्ण व्यवहार को समझने के लिए उसके माता–पिता से सम्पर्क होना आवश्यक है।
3. समाजीकरण हेतु यह भी आवश्यक है कि अध्यापक को संस्कृति का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए तथा उसके मन में संस्कृति के लिए सम्मान भाव होना चाहिए चूँकि ऐसा अध्यापक संस्कृति के हस्तान्तरण द्वारा बालक का समाजीकरण उचित ढंग से कर सकता है।
4. विद्यालय परिवेश में तथा उससे बाहर भी अध्यापक को समायोजित व्यवहार का प्रदर्शन करना चाहिए चूँकि अध्यापक विद्यार्थियों के लिए आदर्श होता है व विद्यार्थी उसका अनुगमन करते हैं।

5. अध्यापकों द्वारा छात्रों को सामूहिक कार्य करने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए चूँकि इससे बालकों में सामूहिकता की भावना का विकास होता है।
6. समाजीकरण हेतु स्वस्थ मानवीय सम्बन्धों का होना परमावश्यक है। इस कारण अध्यापक के सभी से मधुर सम्बन्ध होने चाहिए। साथ ही बच्चों को भी मधुर सम्बन्ध बनाने हेतु उसे प्रेरित करना चाहिए।
7. अध्यापक का व्यवहार निष्पक्ष होना चाहिए उसे सभी छात्रों पर समान ध्यान देना चाहिए अर्थात् उसका व्यवहार धर्म, जाति, लिंग आदि पर आधारित नहीं होना चाहिए।
8. बालक के अन्दर आलोचनात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न किया जाये जिससे वह सद्गुणों व अवगुणों के मध्य अन्तर कर सके व सद्गुणों को अपनाते हुए दुर्गणों से दूर रहे।
9. अध्यापक को छात्रों के अन्दर प्रतिस्पर्धा, सम्मान, तिरस्कार, पुरस्कार, दण्ड व अनुशासन की भावना उत्पन्न करनी चाहिए चूँकि सामाजीकरण हेतु यह अत्यावश्यक गुण है।
10. विद्यालय में अध्यापक को विभिन्न धर्म एवं जाति के उत्सवों को सामूहिक रूप से आयोजित करना चाहिए, चूँकि इससे सभी छात्र एक–दूसरे को समझेंगे व उनमें 'हम की भावना' का विकास होगा।
11. खेलकूद के अवसर भी छात्रों को प्रदान करने चाहिए चूँकि खेल के मैदान में बालक के अन्दर वांछनीय गुण उत्पन्न होते हैं जो सामाजीकरण के लिए अनिवार्य है।
12. अध्यापक द्वारा छात्रों को महान व्यक्तियों के आदर्शो व कृत्यों का ज्ञान कराना चाहिए जिससे बालक उनका अनुसरण करके सही दिशा की ओर उन्मुख हो।

13. विद्यालय में प्रतिदिन प्रार्थनाकालीन सभाएँ आयोजित की जानी चाहिए जिसमें अध्यापकों द्वारा प्रतिदिन नैतिकतापूर्ण भाषण होना चाहिए।

14. अध्यापक को छात्रों से सामाजिक अन्तःक्रिया करने के अवसर भी प्रदान करने चाहिए।

15. शिक्षक को बालक में उचित भाषा का विकास करना चाहिए जिससे अपने विचारों आ आदान–प्रदान आसानी से हो सके तथा मधुर सम्बन्ध स्थापित हो सके।

अतः उपदेश देकर नैतिकता या चारित्रिकता का पाठ तो पढ़ाया जा सकता है। परन्तु उसे विद्यार्थी के आचरण में नहीं उतारा जा सकता। नैतिक मूल्यों को आचरण में उतारने के लिए आवश्यक है कि परिवार और शिक्षक अपने व्यक्तित्व के माध्यम से तथा दूसरे प्रभावी तरीकों से वांछित गुणों को विद्यार्थियों के व्यक्तित्व में सन्निहित कराएँ। साथ ही समाज के अन्य अभिकरणों जैसे मिडिया, साहित्य, मित्रमण्डली तथा वातावरण आदि उसे सात्विक रूप प्रदान कर सकते हैं।

नैतिक मूल्यों की शिक्षा का उद्देश्य

नैतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा के निम्न उद्देश्य हैं –

1. छात्रों में सत्य, सहयोग, प्रेम, करूणा, शान्ति और अहिंसा, साहस, समानता, त्याग, न्याय, श्रम की मर्यादा, विश्व बन्धुत्व और वैज्ञानिक दृष्टि जैसे मूलभूत गुणों का विकास करना।

2. छात्रों को अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में दायित्वनिष्ठ नागरिक बनाना।

3. छात्रों को समाजवाद, धर्म निरपेक्षता और जनतन्त्र सम्बन्धी राष्ट्रीय उद्देश्यों को समझाना और उनका सम्मान करना सिखाना।

4. छात्रों में देश की सामाजिक आर्थिक दशा के प्रति चेतना जगाना और उनके उत्थान के लिए कार्य करने को प्रेरित करना।
5. छात्रों में खुले दृष्टिकोण का विकास करना ताकि वे धार्मिक, भाषायी, जातिवाद या लिंगभेद से उत्पन्न संकीर्णताओं से ऊपर उठ सके।
6. छात्रों को अपने आपको समझने की शक्ति प्रदान करना ताकि वे अपनी अन्तरात्मा के विकास करने का प्रयत्न करें तथा जीवन की वास्तविकताओं को समझ सके।
7. छात्रों में निम्न के प्रति उचित अभिवृति का विकास हो सके–
    1. अपने और सहपाठियों के प्रति।
    2. अपने देश के प्रति।
    3. अन्य देशों के प्रति, ताकि अन्तर्राष्ट्रीय सूझबूझ बढ़े।
    4. जीवन व पर्यावरण के प्रति।
    5. सभी धर्मो के प्रति।

एक शैक्षिक कार्यशाला में नैतिक शिक्षा के विषय में

शिक्षा–शास्त्रियों में परस्पर विचार–विमर्श के उपरान्त जो निष्कर्ष निकले उसे नैतिक शिक्षा के निम्नलिखित छः उद्देश्यों के रूप में स्पष्ट किया जा सकता है –

1. पूर्ण कार्यशील मनुष्य के आध्यात्मिक, सामाजिक, शारीरिक, भावनात्मक, बौद्धिक और नैतिक आयामों का विकास।
2. व्यक्तियों में समूह की भावनाओं का विकास।
3. समाज का विकास जिसमें –
    1. सुनागरिकता की शिक्षा और जनतांत्रिक सांस्कृतिक मूल्यों का उन्नयन।
    2. राजनैतिक जागरूकता।
4. राष्ट्रीय अस्मिता, भावात्मक और एकता का विकास।
5. सार्वभौम समाज की अवधारणा का विकास।

6. इन नैतिक प्रश्नों के प्रति विवेकशील और संवेदनशीलता का विकास।

इस प्रकार आज के सामाजिक परिदृश्य के सन्दर्भ में नैतिकशिक्षा का उद्देश्यसामाजिक सन्दर्भ में व्यक्ति के समग्र व्यक्तित्व का शारीरिक और आध्यात्मिकविकास कर उनमें नैतिकता निर्णय कीक्षमता जाग्रत करना है,जिससे वहगतिशील समाज में सभी श्रेयस्करमूल्यों को अपने जीवन का अविभाज्य अंग बना सके।

इन सभी उद्देश्यों को पूरा करने के लिए विद्यालयों में विभिन्नकार्यक्रमों द्वारा निम्नलिखित पाँच कदम उठाने आवश्यक है–

1. **ज्ञान देना –** विभिन्न कार्यक्रमों द्वारा विभिन्न मूल्यों से अवगत करना।
2. **विश्वास पैदा करना –** छात्रों में मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करना।
3. **निर्णय लेना –** छात्रों के समक्ष विभिन्न मूल्यों के विषय में द्वन्द्वात्मक परिस्थितियाँ उत्पन्न करना ताकि वे उचित निर्णय ले सके।
4. **कार्य–** वास्तविक जीवन में मूल्यों के प्रयोग की स्थितियाँ प्रदान करना।
5. **स्वतःकार्य–** विद्यालय के विभिन्न कार्यक्रम द्वारा छात्र को इस योग्य बनाए कि मूल्यों का व्यवहार त्वरित व स्वतः होने लगे।

विद्यालय में बालकों के नैतिक मूल्यों का विकास निम्न प्रकार किया जा सकता है–

1. **आचरण–** शिक्षक स्वयं का आदर्श आचरण छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करे ताकि वे उनका अनुकरण कर मूल्यों की शिक्षा अप्रत्यक्ष रूप से स्वतः ही प्राप्त करे।

2. **अनुभव** – इसके अन्तर्गत विद्यालयों में बालसभा, छात्र संसद, एन.सी.सी., खेलकूद, धार्मिक उत्सवों, पर्वो का आयोजन कर छात्र–छात्राओं में सेवा, सहानुभूति उत्तरदायित्वों जैसे अनेक नैतिक गुणों का विकास किया जा सकता है।
3. **आकांक्षा–** छात्रों के मन में उच्च आकांक्षा को उत्पन्न किया जाना चाहिए, इसके लिए महापुरूषों के आदर्श छात्रों के समक्ष प्रस्तुत करने चाहिए।
4. **कथा विधि**–प्रेरणादायक कथा सुनाकर तथा छात्रों को स्वयं सुनने के लिए प्रेरित करके मनोरंजन के साथ–साथ नैतिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।
5. **नाटक मंचन–** विभिन्न शिक्षाप्रद नाटकों का अभिनय छात्रों द्वारा करवाय जा सकता है। जिसके द्वारा उनमें नैतिक मूल्यों का विकास किया जा सकता है।
6. **उपदेश विधि –** छात्रों को विभिन्न उपदेशात्मक प्रसंगों को सुनाकर भी मूल्यों का विकास किया जा सकता है।
7. **प्रार्थना स्थल –** प्रार्थना स्थल पर अध्यापक द्वारा नैतिक शिक्षा का ज्ञान देना, छात्रों से नैतिकता परक कहानियाँ कहलवाना, राष्ट्रगान जैसी प्रवृति को प्रभावी ढंग से लागू करना चाहिए।
8. **मानव सेवा** – छात्रों को मानव सेवा के लिए प्रेरित करना चाहिए।
9. **पुस्तकालय का उपयोग–** छात्रों को पुस्तकालय जाकर अच्छे साहित्य को पढ़ने के लिए प्रेरित करना चाहिए जिससे उनमें अच्छे मूल्यों का विकास हो सके।
10. **पुरस्कार–**बहादुरी या परोपकारी कार्य करने वाले छात्र को सार्वजनिक रूप से पुरस्कृत करना चाहिए, जिससे अन्य छात्रों को भी उनके कार्यो से प्रेरणा मिल सके।

राजस्थान के भूतपूर्व महामहीम राज्यपाल भी मदन लालखुराना द्वारा वर्तमान परिवेश में नैतिक शिक्षा को विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में एक विषय के रूप में स्थान देने पर बल दिया गया है।मूल्य एक व्यक्ति के जीवन के वे अन्तिम लक्ष्य होते हैं जिनका चयन एक सत्त प्रक्रिया द्वारा होता है एक व्यक्ति के लक्ष्य, आकांक्षा, विश्वास, रूचि, अभिरूचि, चिन्तन इत्यादि मूल्यों के सूचक ही होते हैं जिनके विकास पर मूल्य निर्भर रहते हैं।आर्थिक जीवन के प्रवेश द्वार में जब तक नैतिक पक्ष का सम्बल नहीं मिलेगा, तब तक विद्यार्थियों को अपनी रूचि के व्यवसाय प्राप्त करने में सहायता नहीं मिलेगी।

खेद का विषय है कि हमारी शिक्षा केवल भौतिक विकास पर ध्यान देती है..... हमारी शिक्षा शिक्षार्थी में बौद्ध जाग्रत नहीं करती वह जिज्ञासा नहीं जगाती जो स्वंय सत्य को खोजनें के लिए प्रेरित करें और आत्मज्ञान की ओर ले जाएं, सही शिक्षा वही हो सकती है जो शिक्षार्थी में नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों को विकसित कर सकें।

भारत में वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। छात्रों में अनुशासनहीनता, अध्यापकों में अपने उत्तर दायित्वों कें प्रति गैर गम्भीरता आगे चलकर बेरोजगारी और ऐसी ही अनेक समस्याएं भारतीय शिक्षा जगत में व्याप्त होगी, इनके कारण की गहराई में जाया जाएं तो प्रतीत होगा कि इन समस्याओं के मूल में प्रारम्भिक शिक्षा की उपेक्षा, नींव की कमजोरी, अयोग्य अध्यापकों की नियुक्ति, ध्येयहीनता तथा विद्यार्थियों में नित्य प्रति के अध्ययन कार्य की अवहेलना आदि कई कारण प्रतीत होगें परन्तु मूल कारण है– ध्येयहीनता, विद्यार्थी के सामने स्पष्ट नही रहता है कि उन्हें पढ़ कर क्या करना है ? जो शिक्षा वे प्राप्त कर रहे है उसका उनके जीवन में क्या योगदान होगा? जीवन जीने में प्राप्त की जा रही शिक्षा की क्या भूमिका होगी?

यह बात सैकड़ो बार लिखी और हजारो बार दोहराई जा चुकी है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली हमें अंग्रेजो से विरासत मे मिली थी और अंग्रेजो

ने इस शिक्षण प्रणाली का ढांचा यह उददे्श्य सामने रखकर खड़ा किया था कि उन्हें अपना राज–काज चलाने के लिए सस्ते मूल्य पर देशी क्लर्क और बाबू मिल जांए।

अंग्रेज तो चले गए परन्तु वह शिक्षा पद्धति ज्यों की त्यों कायम है। कहीं कोई फेरबदल हुआ है तो वह भी नाममात्र का ही और उसका परिणाम भी नगण्य सा ही दिखाई देता है। यही कारण है कि पढ–लिखकर डिग्रियां प्राप्त करते ही छात्र नौकरियों की तलाश मे दर–दर भटकतें रहते है। सरकारी कार्यालयों और– निजी संस्थाओं मे नाम मात्र के ही स्थान खाली होते है। जगहें कम और उम्मीदवार कई गुना अधिक, स्वाभाविक ही बेकारी बढ़ती है और शिक्षा प्राप्ति के बदले छात्रों का जो कुछ हाथ लगता है– वह बेकारी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली की तुलना प्राचीनकाल में प्रचलित गुरूकुल पद्धति से करते है। तो उसमें जमीन, आसमान का अंतर दिखाई देता है। प्राचीनकाल में छात्र गुरूकुल में जहां सम्पूर्ण विकसित और प्रखरता सम्पन्न व्यक्तित्व लेकर निकलते गये, वही आज के शिक्षण संस्थानों से संस्कारों के नाम पर उनकी स्थिति शून्यवत ही रहती है। आज की टुटी–फुटी लकीर में, केवल शिक्षण की चिन्ह पूजा करने वाले विद्यार्थियों में छात्रों के स्तर चारित्रय और उनकी लक्ष्य हीनता को देखकर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि यह निरी विडम्बना मात्र है।

बौद्ध धर्मो में (संगठनों में) छात्रों में वह गम्भीर शक्ति होती थी जिसे आज का निर्बल और अशक्त छात्र वहन करने में भी शायद ही समर्थ हों सकें। पाणिनी की तरह व्याकरण, पंतजलि की तरह योग, चरक और सुश्रुत की तरह औषध शास्त्रों मनु और याज्ञवलक्य मानव आचार शास्त्रों में आत्यन्तिक सूक्ष्म तत्वाज्ञान और बौद्धिक शक्तियों का अवतरण गुरूकुल पद्धति से प्राप्त विशेषताओं की ही परिणति है।

महात्मा बुद्ध की शिक्षा का जीवन से पूर्ण संबंध था। व्यक्ति के अज्ञान, अविद्या के नाश के अतिरिक्त उसके गुण, कर्म, स्वभाव, आचार, विचार, दृष्टिकोण, बल, विवेक, चातुर्य में तथा शारीरिक एंव मानसिक स्वास्थ्य का विकास अर्थात् मनुष्य के व्यक्तिगत का सर्वागींण विकास ही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए तप की समुचित व्यवस्था की जाती थी। इस व्यवस्था द्वारा ज्ञानवान और बुद्धिमान आचार्यो के सम्पर्क में रहकर प्राचीन काल में यहां के नागरिकों ने जो सर्वांगींण शिक्षा प्राप्त की थी, इसी से वे अपने ज्ञान और संस्कृति को प्रकाशित रख सकें, उसे गौरवास्पद बना सकें।

गुरूकुलों के रूप में पुनः वही प्रचलन आज के समय में भले ही सम्भव और व्यवहार्य न हो, परन्तु उन विशेषताओं का समावेश तो किया ही जा सकता है। बौद्ध शिक्षा दर्शन एक ओर करोड़ो लोगो में शिक्षा के माध्यम से प्राण फूंकने मे समर्थ है तो दूसरी और वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की कमियों को दूर करने में समर्थ है। उक्त समस्या की पृष्ठभूमि में बौद्ध दर्शन के शैक्षिक निहितार्थ का विस्तार से विवेचन किया गया है। तथा बौद्ध शिक्षा दर्शन की वर्तमान में प्रासंगिकता पर विचार किया गया है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली उन गरीब बालकों को कोई दूसरा अवसर नहीं प्रदान करती है जो इसके संकीर्ण प्रवेश द्वारा में प्रवेश से वंचित रह जाते है या जो सामाजिक या आर्थिक कारणों की विवशता से त्रस्त होकर इससे बाहर निकल जाते है, वर्तमान शिक्षा प्रणाली निहित स्वार्थो की सहायता करने को प्रोत्साहित करती है, यथा स्थितिवाद को प्रोत्साहन देती है तथा शैक्षिकसमानता के अवसरो का गला घोंटती है। वस्तुतः वर्तमान शिक्षा प्रणाली दोषमुक्त तथा असमानताओं को बढावा देने वाली है। कह सकते हैं कि तार्किक चिन्तन एंव अभिवृतियों में विकास के साथ–साथ वैज्ञानिक एंव तकनीकी प्रगति में अत्यंत तीव्र गति से वृद्धि हुई है, इसे बौद्धिक क्रांति कहा जा सकता है।

वैज्ञानिक एंव तकनीकी की प्रगति ने वर्तमान शिक्षा प्रणाली को भी चुनौती बना दिया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में जो शिक्षा प्रदान की जा रही है। वह शिक्षा अगले दस वर्षो में पिछड़ी मानी जाने लगती है। वर्तमान शिक्षा औपचारिकता के बंधन में जकड़ी है वह पूर्णतः निष्क्रिय होकर मूल उद्देश्य से भटकती जा रही है, वस्तुतः वर्तमान शिक्षा उपाधिकारक बनती जा रही है,न कि ज्ञानवर्धक। इसी कारण शिक्षित बेरोजगारी में तीव्र वृद्धि हो रही है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली भारतीय सभ्यता एंव संस्कृति से अलगाव का वातावरण निर्माण कर रही है। वस्तुतः वर्तमान शिक्षा प्रणाली देश की आवश्यकताओं की पूर्ति में सक्षम नही है। अतएव एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जो देश या समाज तथा व्यक्ति की समस्याओं का समाधान कर सके तथा समाज में विलुप्त नैतिक मूल्यों की पुनःस्थापना कर सकें।

यह कार्य बौद्ध काल में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था को अगींकृत कर किया जा सकता है। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में समानता का वातावरण था, ऊँच नीच का भेदभाव नही था, ना ही धनी–निर्धन का भाव। शिक्षा मुक्त हस्त से आचार्यो द्वारा सुयोग्य पात्र को प्रदान की जाती थी, गुरू–शिष्य संबंध परस्पर सामंजस्यपूर्ण मधुर थें। शिष्य गुरू को यथोचित सम्मान प्रदान करता था। गुरूकुलों में पूर्णतः अनुशासनबद्ध शिक्षा प्रदान की जाती थी, मौखिक तथा लिखित परीक्षणों द्वारा ज्ञान की पुष्टि की जाती थी, स्त्री शिक्षा तथा शूद्र शिक्षा समान रूप से दी जाती थी, समाज में स्नातक का सम्मानीय स्थान था। समाज में एकता का पाठ बौद्ध शिक्षा केन्द्र भली–भांति सफलता पूर्वक पढ़ा रहे थे। अनुसंधानों पर पर्याप्त समय दिया जाता था, नवीनतम अनुंसधानों को प्रेरित किया जाता था।

अतएवबौद्ध दर्शन में शिक्षा की स्थिति या विस्तार के अध्ययन द्वारा बौद्ध शिक्षा प्रणाली का अध्ययन कर प्राप्त निष्कर्षो को वर्तमान शिक्षा में

प्रयोगकर वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार तथा समुन्नत किया जा सकता है।

1.2 वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता एंव महत्व–

वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली अंग्रेजी शासन की देन है इसी कारण यह शिक्षा प्रणाली अपने विशिष्ट, कृत्रिम संरचित वातावरण के कथास्वरूप स्वाभाविक भारतीय सामाजिक वातावरण के साथ समुचित सामजंस्य स्थापित नही कर पाती, अतः शिक्षा वास्तविक जीवन से दूर, व्यावहारिकता से बहुत दूर, औपचारिकता के शिकंजो से जकड़ी होने के कारण अपना वास्तविक स्वरूप और उद्देश्य खो बैठी है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षक भी कोरे ज्ञान की गठरी लिए अव्यावहारिकता एंव अकर्मण्यता का प्रतिपादन करते फिरते है और हाल यह है कि विद्यार्थी उसका अनुसरण करते हुए निरूदेश्य नौकरियों की प्राप्ति हेतु व्यग्र रहते है इस प्रकार वर्तमान शिक्षा प्रणाली शिक्षित बेरोजगारी, सामाजिक असंतुलन को जन्म देती है।

यह एक बंद वृत के समान है जिसके अनुसार अध्ययन करने पर जीवन में ठहराव सा आ जाता है। वस्तुतः वर्तमान शिक्षा इस विश्वास पर आधारित है कि शिक्षा जीवन की तैयारी के लिए है वस्तुत इसके विपरीत यह होना चाहिए कि शिक्षा जीवन अनुभव के साथ चलने वाली प्रक्रिया है।

जीवन ही शिक्षा है और शिक्षा ही जीवन है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षित भारतीय सामाजिक प्रणाली में सामंजस्य स्थापित नही कर पाते। यह एक ऐसी बंद प्रणाली है जिसके कार्यकाल का विस्तार उसमें प्रवेश तथा उसका समापन नियमो से जकड़ा हुआ है, उसमें लचीलेपन का अभाव है। यह केवल प्रमाण पत्र एवं उपाधियां वितरित करने का यंत्र मात्र है। यह केवल मैट्रीकुलेटो एवं ग्रेजुएटों की संख्या में वृद्धि करती है।

किन्तु मानव मन में ज्ञान की पिपासा जाग्रत कर वैयक्तिक एंव सामाजिक जीवन की उन्नति में सहायक नही बन पाती है।

वर्तमान समय में पश्चिमी सभ्यता एवं शिष्टाचार का अंधानुकरण तीव्रगति से हो रहा है। कामुक भावों का प्रदर्शन, जन्म दिवस पर केक काटना तथा दीप बुझाना, विवाहोत्सव आदि में पाश्चात्य ढंग से नृत्य करना आदि रीतियां बढ़ रही है। भारतीय समाज इन प्रवृतियों का शिकार हो चुका है। भौतिकवादी युग की शिक्षा का भौतिक होना स्वाभाविक है। वर्तमान शैक्षिक वातावरण भौतिकता में इतना अधिक दूषित हो गया है कि शिक्षक, शिक्षार्थी का लक्ष्य परीक्षा में सफलता प्राप्त करना या करवाना हो गया है। अच्छी श्रेणी में परीक्षा उतीर्ण हो कर प्रमाण पत्र प्राप्त हो जाने मात्र से व्यक्ति की योग्यता प्रमाणित हो जाती है, चाहे वह प्रमाण पत्र अनुचित माध्यमों से क्यों न प्राप्त हुआ हो।अनुशासनहीनता, नकल की प्रवृति अभद्र व्यवहार तथा अस्वस्थ नेतागिरी का नग्न प्रदर्शन शिक्षण संस्थाओं में दृष्टिगोचर हो रहा है। शिक्षा संस्थाओं में अध्ययन–अध्यापन का वातावरण मृतप्रायः हो गया है। शिक्षक–शिक्षार्थी के बीच संबंधो में पवित्रता का अभाव होता जा रहा है। गुरू को सर्वाधिक महत्व देने की बात इतिहास एंव कथा कहानियों का विषय होती जा रही हैं।

प्राचीनकालीन शिक्षा में गुरू–शिष्य के मध्य पिता–पुत्र कासंबंध है, गुरू को माता–पिता, सखा तथा ईश्वर से सर्वोच्च स्थान प्रदान किया जाता था, आज अपने संकीर्ण स्वार्थो की पूर्ति हेतु न तो शिष्य अपने कर्तव्यों का पालन कर रहा है, न ही गुरू अपने उत्तरदायित्वों की पूर्ति कर रहा है। नैतिक मूल्यों में दिन–प्रतिदिन ह्रास हो रहा है।

अनेक अनुसंधानकर्ता प्रायः यह भ्रान्ति धारण किए रहते है कि भारतीय शिक्षा दर्शन प्राचीन शिक्षा प्रणाली में परिलक्षित होता है। वास्तविकता तो यह है कि प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन एवं प्राचीन शिक्षा प्रणाली दोनों ही पृथक एवं स्वतंत्र विषय है, इस दिशा में अनुसंधानों में अपर्याप्त कार्य ही इस भ्रान्त धारणा का प्रमुख कारण है। अतएव प्राचीन ग्रंथो में भारतीय

शिक्षा दर्शन संबंधी तथ्यों के वैज्ञानिक एंव क्रमबद्यविवेचना तथा शोधकार्यो की महत्ती आवश्यकता हैं।

बौद्ध दर्शन की शिक्षा एवं इतिहास का ज्ञान अनुसंधान कर्ताओं एंव अध्येताओं के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। कहते है कि किसी भी राष्ट्र का आईना उसकी शिक्षण संस्थाओं में ही प्रतिबिम्बित होता है। प्राचीन भारत में सांस्कृतिक एवं समाज में राष्ट्रीय परम्पराओं के निर्वहन एवंतदनुकूल आचरण के लिए प्रोत्साहित करने के प्रधान केन्द्र शिक्षा केन्द्रो को ही माना जाता था। सर्वप्रथम बौद्ध काल में बौद्ध विहारो के क्रमिक तथा समुन्नत विकास के फलस्वरूप वर्तमान विद्यालयों का जन्म हुआ। बौद्ध कालीन शिक्षा केन्द्र वर्तमान शिक्षा केन्द्रो के आधार माने जाते है।भारतीय बौद्ध शिक्षा प्रणाली अत्यंत प्राचीन है। अतएंव आधुनिक भारत की शिक्षा प्रणाली में व्याप्त अव्यवस्थाओं एवं दोषो की समाप्ति हेतु यह परमावश्यक है कि प्राचीन भारतीय बौद्ध शिक्षा दर्शन का सर्वांगीण अध्ययन किया जाए।

वर्तमान शिक्षा को धर्म, संस्कृति दर्शन, नैतिक–मूल्यों जीवन मूल्यों तथा आध्यात्मिक आदर्शो से युक्त करना होगा और इसकी निरन्तरता को स्थापित करना होगा। बौद्ध धर्म कें शैक्षिक चिंतन एवं नैतिक मूल्यों का वर्तमान में प्रासंगिकता का अनुमान करना ही वर्तमान अनुसंधान का उद्देश्य है, वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार एवं सर्वांगीण विकास हेतु प्रस्तुत शोध कार्य की महत्ता एवं महत्ती आवश्यकता स्पष्ट है।

1.3 शोधसमस्या का औचित्य–

बौद्धशिक्षा दर्शन मानव जाति के कल्याण के लिए मानव मूल्यों को जाग्रत करने में तथा मानव मूल्यों की स्थापना करने में सक्षम है। भारतीय जीवन दर्शन का मूल आधार धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष है। भारतीय जीवन दर्शन भी इन चारों में अद्भुत समन्वय स्थापित करता है। धर्म तो जीवन का विशिष्ट व्यावहारिक तत्व है, जो व्यक्ति बिना किसी अहित एवं बिना किसी

को नष्ट पहुंचाये जीवन व्यतीत करता है वही सच्चे अर्थो में धर्म की पालना करता है उसी को धार्मिक कहा जाता है।

बौद्ध धर्म दर्शन के अंतर्गत धर्म को नैतिक आचरण सहिंता के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। अर्थ तथा काम को बौद्ध दर्शन मर्यादाओं के भीतर स्वीकार करता है। इस कारण बौद्ध शिक्षा के पाठयक्रम में व्यवसायी शिक्षा को महत्व दिया गया, मोक्ष तो बौद्ध दर्शन का परम लक्ष्य माना गया है। भगवान ने मोक्ष के मार्ग की खोज हेतु अपना जीवन व्यतीत कर दिया, बुद्ध का मोक्ष मार्ग समस्त मानव के लिये था। बुद्ध संघ, धर्म, बौद्ध शिक्षा के तीन अंग थे। बुद्ध का तात्पर्य है–आचार्यतथा ज्ञानी बालक की शिक्षा में शिक्षक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान था। सच्चा ज्ञान आचार्य के बिना संभव नही है।

तथा ज्ञान की प्राप्ति हेतु संघ का होना परमावश्यक है। तत्कालीन संघ का तात्पर्य शिक्षा केन्द्र से माना जाता है। शिक्षा प्राप्ति हेतु संघमें प्रवेश लेना परमावश्यक था। बौद्ध शिक्षा संघो में सुयोग्य विद्वान एंव आचार्यो द्वारा प्रदान की जाती है। धर्म बौद्धशिक्षा का तृतीय महत्वपूर्ण उद्धेश्य तथा अंग था। धर्म की शिक्षा द्वारा ही सच्चे तथा वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में शिष्य, गुरू तथा शिक्षा केन्द्र, पाठयक्रम आदि के महत्व को तो स्वीकार किया गया परन्तु धर्म का प्रवेश स्वीकार नही किया गया है। धर्म से ही नैतिकता का प्रादुर्भाव सम्भव है। धार्मिक शिक्षा का पाठयक्रम में स्थान न होने तथा धार्मिक शिक्षा को महत्व न दिये जाने अपितु उपेक्षा किये जाने से आधुनिक छात्र, अध्यापक तथा समाज के नैतिक चरित्र का पतन हो रहा है। बालक की लौकिक उन्नति के साथ–साथ ही आध्यात्मिक उन्नति हेतु पाठयक्रम में धार्मिक शिक्षा या नैतिक शिक्षा को सम्मिलित करना परमावश्यक है। तभी समाज मे आध्यात्मिक चेतना का जागरण हो सकेगा। अतएव आध्यात्मिक, धार्मिक

तथा नैतिकता की पुर्नस्थापना में बौद्ध शिक्षा प्रणाली का प्रयोग करना इस दिशा में सार्थक प्रयास हो सकता है।

आधुनिक भारत की शिक्षा प्रणाली का प्रमुख आधार समानता तथा सर्वधर्म सम्भाव हैतथा विद्वानों द्वारा आधुनिक भारतीय शिक्षा में नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना के प्रयास किए जा रहे है परन्तु जिन नवीन मूल्यों की स्थापना के प्रयास किए जा रहे है वे भारतीय जीवनादर्शो एवं जीवन मूल्यों को अपनाने से ही सम्भव है क्योंकि प्राचीन भारतीय जीवन मूल्य नैतिकता का विकास करते है, ये प्राचीन जीवनादर्श, सांस्कृतिक, सभ्य, अनुशासनबद्ध एवं सदाचारी बनाते है। सामाजिक समानता तथा आर्थिक एवं राजनैतिक समानता, प्राचीन भारतीय जीवन मूल्यों को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बिना समावेशन के संभव नही हैं। भारतीय जीवन मूल्यों के आधार पर ही आदर्श मानव जीवन का पूर्ण विकास संभव है। बौद्ध दर्शन की प्रेरणा से ही ''सर्वे भवन्तु सुखिन'' की कल्पना साकार की जा सकती हैं। वस्तुतः अंहिसा परोपकार,त्याग सेवाभाव एंव तपस्या ऐसे भारतीय जीवन मूल्य हैजो मानव को उसकी संकुचित विचारधारा को त्यागने तथा बंधुत्व की विशालता एवं प्रेम का अनुभव प्रदान करते हुए उसके जीवन को आदर्शमयी एवं सुख–शांति से परिपूर्ण बनाते है। वस्तुतः मानव जाति का पवित्र उद्देश्य भी आध्यात्मिक शांति द्वारा ही प्राप्त है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में जो शिक्षा व्यवस्था प्राप्त होती है, वह बहुत कुछ अप्रत्यक्ष रूप से बौद्ध धर्म एवं दर्शन से प्रभावित है। बौद्ध शिक्षा प्रणाली मेंपाठ्यक्रम विस्तृत, उपयोगी तथा अलग–अलग थे। नालन्दा, तक्षशिला, वल्लभी, विक्रमाशिला, काशी, ओदन्तपुरी, में बड़े–बड़े शिक्षा केन्द्रो की स्थापना थी। जहां सुयोग्य विद्वानों तथा आचार्यो द्वारा हजारों की संख्या में विद्यार्थियों को पृथक–पृथक प्रकार की शिक्षा नियमबद्ध एवं अनुशासनिक वातावरण में प्रदान की जाती थी। इन शिक्षा केन्द्रो को विश्वविद्यालय की संज्ञा दी जाती थी। इन विश्वविद्यालयों में सभी वर्णो के तथा सुदूरवर्ती क्षैत्रों एवं देशो के विद्यार्थी अपनी ज्ञान पिपासा शान्त करने

के लिए आते थे, विदेशी यात्रियों ने भी इन विश्वविद्यालयों में शिक्षा ग्रहण की थी।

चीन, तिब्बत, मलाया, लंका, जावा, सुमात्रा आदि अनेक सुदूरवर्ती देशों से विद्यार्थी इन शिक्षा केन्द्रों से ज्ञान प्राप्त हेतु, प्रवेश के लिए उत्सुक रहते थे। वर्तमान में विश्व के अन्य देशों द्वारा भारत को विश्वगुरू मानने का प्रमुख कारण इन्ही प्राचीन शिक्षा केन्द्रो को माना जाता था। इन शिक्षा केन्द्रों की शिक्षा विश्वव्यापी तथा सर्वोत्कृष्ट थी। भारतीय शिक्षा के सभी उच्चादर्श इनमें विद्यमान थे। यदि आज किसी लुप्त भारतीय ग्रन्थ का चीनी भाषा में अनुवाद प्राप्त होता हैं या किसी महत्वपूर्ण पालि या संस्कृत ग्रन्थ की हस्तलिपीचीन, जापान, तिब्बत, मध्य एशिया या दक्षिण पूर्व एशिया में प्राप्त होती है तो इसका श्रैय भी बौद्ध शिक्षा प्रणाली को दिया जाता है।

बौद्धशिक्षा केन्द्रों में विभिन्न देशों के विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर ग्रन्थों की प्रतिलिपि स्वभाषा एंव स्वदेश में करते थे।

इस प्रकार बौद्धशिक्षा केन्द्रो में प्रचलित शिक्षा प्रणाली ने शिक्षा को भारत तथा विश्व के कई देशों में सर्वगुण बना दिया था। अच्छे कर्मों द्वारा ही व्यक्ति जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। इस प्रकार व्यक्ति मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा चारित्रिक विकास द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण व्यक्ति का विकास बौद्ध शिक्षा दर्शन का पवित्र उद्देश्य है। इस दृष्टि से वर्तमान शोध समस्या का औचित्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है।

1.4 शोधसमस्या का कथन–

धर्म एवं नैतिकता अविछिन्न, दोनो में अटूट संबंध है। अतःएवं वर्तमान शिक्षा प्रणाली में व्याप्त दोषों को दूर करने के लिए धर्म और जीवन के उस चर्म लक्ष्य को हृदयंगम करना होगा, जो नैतिक उत्थान को जन्म

देता है। मात्र भूमि के प्रति भक्ति, समाज के साथ एकात्मकता की भावना, राष्ट्र का सम्मान यह सभी कार्य शिक्षा प्रणाली में बौद्ध शिक्षा दर्शन का समावेश कर किये जा सकते है। इस लिए अध्ययन एंव शोध कार्य को बौद्ध दर्शन के शैक्षिक निहितार्थ हेतु रखा गया है। तथा शोध कथन ''बौद्ध धर्म के शैक्षिक चिन्तन एवं नैतिक मूल्यों का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रासंगिकता–एक अध्ययन''का चुनाव किया गया।

1.5 शोधसमस्या के उद्देश्य–

शिक्षा अनुसंधान की समस्याओं में विविधता अधिक होती है, इसलिए इसके कुछ उद्देश्य निर्धारित किए जाते है। प्रस्तुत उद्देश्य निम्न प्रकार है :–

i. बौद्ध दर्शन के मूल्य मीमांसात्मक पक्ष का संक्षिप्त अध्ययन करना।

ii. बौद्ध दर्शन के शैक्षिक मूल्यों का निम्न संदर्भ में विवेचन करना।
   1. शिक्षा का उद्देश्य
   2. शिक्षा का पाठ्यक्रम
   3. शिक्षण विधि
   4. छात्रों की स्थिति
   5. अध्यापक की स्थिति
   6. बौद्ध दर्शन में शिक्षा का विस्तार एंव प्रभाव

iii. बौद्धदर्शन शिक्षा प्रणाली के अन्तर्गत संस्थागत शिक्षा प्रणाली का अध्ययन करना।

iv. बौद्ध दर्शन के सिद्धांतो का अध्ययन करना।

v. बौद्ध दर्शन के नैतिक मूल्यों का अध्ययन करना।

vi. वर्तमान परिपेक्ष्य में बौद्ध दर्शन के शैक्षिक विचारों की प्रासंगिकता का अध्ययन करना।

vii. बौद्ध दर्शन में शिक्षा एंव सहशिक्षा के विकास तथा समाज पर इसका प्रभाव का अध्ययन करना।

viii. प्रस्तुत शोधकार्यकी विवेचना द्वारा निष्कर्ष निकालना तथा निष्कर्ष के आधार पर सुझाव प्रस्तुत करना।

1.6 शोध विधि–

प्रस्तुत शोधकार्य की प्रकृति दार्शनिक अनुसंधान की होने के कारण शोधार्थीद्वारा शोध प्रबंध में दार्शनिक विधि व पाठ्यवस्तु विश्लेषण विधि को प्रयुक्त किया गया है। इस शोध प्रबंध में शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु शोध विधि को दो भागों में विभाजित किया है। जिसका शोध कार्य वैज्ञानिक, आलोचनापरक एवं प्रमाणित हो–

(अ) शोध के स्त्रोत :–

1. प्राथमिक स्त्रोत
2. गौण स्त्रोत
3. तृतीयक स्त्रोत

1. **प्राथमिक स्त्रोत** :– प्राथमिक स्त्रोत वे स्त्रोत है जो व्यक्ति, घटना या संस्था के विषय में प्रथम साक्षी का कार्य करते है। इस प्रकार के स्त्रोत घटना से तात्कालिक सम्बंध रखने वाले होते है, जिसके समक्ष वास्तव में घटना घटित होती है, ये स्त्रोत अधिक विश्वसनीय होते है। प्रस्तुत शोधकार्य में अनुसंधानकर्ता ने निम्नलिखित को प्राथमिक स्त्रोत के रूप मे स्वीकार किया है।

(अ) त्रिपिटक :–त्रिपिटक बौद्ध दर्शन की आधार शिला है। इनमें बुद्ध की जीवन की वास्तविक घटनाएं, तत्कालीन समाज एवं शिक्षा की स्थिति का वर्णन है। त्रिपिटक वस्तुतः लंका में तीन पिटकों में रखे गये है। इसलिए इनका नाम 'पिटक' पड़ गया। त्रिपिटक कोई ग्रन्थ नही है।

अपितु तीन ग्रन्थों विनय पिटक, सुत्तपिटक तथा अभिधम्म पिटक का संयुक्त नाम है। ये ग्रन्थ अत्यधिक प्राचीन है और इनमें वर्णित सामग्री प्रमाणिक है। मूल रूप से पालि भाषा में रचित त्रिपिटकों का अनुवाद हिन्दी, सिंहली, चीनी, जापानी, वर्मा तथा तिब्बती आदि भाषाओं में हुआ है। त्रिपिटको का संक्षिप्त उल्लेख निम्नवत् है।

(i) **विनय पिटक** :– भगवान ने भिक्षुओं के आचरण का नियमन करने के लिए जो नियम बनाए थे उन्हें 'प्रतिमोक्ष ' या पालि मोक्ख कहा जाता हैं।

इन्ही नियमों की चर्चा विनय पिटक में है। 'प्रतिमोक्ष' की महत्व इसी से सिद्ध होती है। कि भगवान ने स्वयं कहा था कि उनके न रहने पर प्रतिमोक्ष और शिक्षापदों के कारण भिक्षुओं को अपने कर्तव्य का बौद्ध होता रहेगा और इस प्रकार संध स्थायी होगा। इस ग्रन्थ के तीन भाग है।

अ. सुत्त विभंग :–विनय पिटक का पहला भाग ' सुत्त विभंग' कहलाता है। इसमें प्रायश्चित के नियम है, जिनकी संख्या 227 है।

ब. खन्धक :–विनय पिटक का दूसरा भाग 'खन्धक' कहलाता है। महावग्ग और चुतलवग दोनो खन्धक में समाविष्ट हैं। महावग्ग में प्रवज्या, उपोसथ, पषविस, प्रवारण आदि से संबंधित नियमों का संग्रह है तथा भगवान की साधना का रोचक वर्णन है। चुतलवब में भिक्षुओं के पारम्परिक व्यवहार एंव संघाराम संबंधित नियमों तथा भिक्षुनियों के विशेष आचार का संग्रह है।

स. परिवार :–विनय पिटक का अंतिम भाग 'परिवार' है इसमें वैदिक अनुक्रमणिकाओं की भांति कई तरह की सूचियों का समावेश है।

(ii)**सुत्त पिटक** :–भगवान के संवादो एवं लोक हितकारी उपदेशनाओं का संग्रह सुत्तपिटक में प्राप्त होता है।

(ब)अभिधम्म पिटक :– भगवान के उपदेशों के आधार पर बौद्ध तत्वज्ञान की विवेचना अभिधम्म पिटक में प्राप्त होती है, इस पिटक में निम्नलिखित सात ग्रन्थों का समावेशन है।

i. कथावक्तु :–प्रश्नोत्तर शैली में रचित इस ग्रन्थ का बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास के ज्ञान के लिए सर्वाधिक है।

ii. पठान :– इस ग्रंथ में नाम और रूप के 24 प्रकार कार्य–कारण भाव–संबंध की चर्चा है। इस ग्रंथ में कहा गया हैं। कि केवल निर्वाण ही अंसस्कृत है। शेष सब धर्म संस्कृत है।

iii. पुग्गलि पुंजति :– इस ग्रन्थ में मनुष्य के विभिन्न अंगो का वर्गीकरण किया गया है।

iv. विभंग :– इस ग्रंथ में धर्मो के वर्गीकरण को आगे बढाया गया है। जिनका वर्गीकरण धम्मसंगिणी ग्रंथ में मिलता है।

v. धातुकथा :– धातुओं का प्रश्नोत्तर रूप में व्याख्यान धातुकथा में प्राप्त होता है।

vi. यमन :– कथावत्थु में जिन शंकाओं का समाधान नही हो पाया है। उनका समाधान यमन में किया गया है।

vii. धम्मसंगकिणी :– इस ग्रंथ में धर्मो का वर्गीकरण एवं व्याख्या की गई है।

2. **गौण स्त्रोंत :–** इसमें अप्रत्यक्ष रूप से प्राप्त तथ्यों का संग्रह है, इनका अध्ययन करने एवं विश्लेषण में विशेष सावधानी रखनी होती है।

   अन्य बौद्ध ग्रन्थ :– धर्म, दर्शन एंव शिक्षा से संबंधित कुछ और ग्रन्थ है। जो अत्यंत महत्वपुर्ण सूचना प्रदान करते है। वे ग्रंथ है हर्षचारित, राजतरंगिणी, नागानन्द, रत्नावली, प्रियदर्शिका, कादम्बरी, महावस्त, और विसुद्धिमग्गो आदि।

3. **तृतीयक स्त्रोत** :– तृतीयक स्त्रोत के अन्तर्गत उन पुस्तकों को रखा जाता है। जो तत्कालीन पुस्तको के वक्तव्यों, विचारो व कथनो को विभिन्न दृष्टिकोण से अभिव्यक्त करते है।

1.7 शोध का सीमांकन–

शिक्षा दर्शन का अध्ययन न केवल छात्र के लिए, अपितु शिक्षक के लिए भी आवश्यक है। शिक्षा दर्शन शिक्षण स्वरूप निश्चित करता है अतः शिक्षक के लिए यह आवश्यक है कि शिक्षा दर्शन का महत्व समझ कर उसका भली–भांति ज्ञान प्राप्त करें। शिक्षा दर्शन के ज्ञान में शिक्षक साध्य और साधन के मध्य भेद नही समझ पाता, यह स्थिति दुर्भाग्यपूर्ण है। शिक्षा दर्शन शिक्षा के विभिन्न अंगो पर मौलिक विचार प्रस्तुत करता है। किंतु इसका प्रमुख कार्य शैक्षिक उद्देश्यों के विषय में विचार करना है। हम सदा साधनो की बात करते है साध्य भूलते जा रहे है, साधन का अपना कोई महत्व नही होता, इसका गौरव साध्य के संदर्भ में ही होता है। वर्तमान साधनों का महत्व साध्यों से भी अधिक बढ़ गया है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विभिन्न प्रेक्षणों द्वारा छात्र की बुद्धि की जांच की जाती है। उसकी योग्यता का पता भी लगा लिया जाता हैं परन्तु शिक्षा के उद्देश्यों की और ध्यान नही दिया जाता। जीवन दर्शन की भिन्नता देशकाल के कारण हो सकती है। देश काल, वातावरण के अनुरूप आचार्यवान बनने में सहायता प्रदान कर सकता हैऔर गुरू की अपेक्षा सच्चा गुरू बनने की प्रेरणा देता है। अतः शिक्षक को शिक्षा दर्शन का ज्ञान होना परम आवश्यक है। वस्तुतः सच्चा शिक्षक,सच्चा दार्शनिक होता है।

आरम्भिक विवेचन से स्पष्ट है कि शिक्षा–दर्शन का सम्यक अध्ययन उपरोक्त विभागों के अन्तर्गत किया जाता है, किन्तु विस्तार एंव समय को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध 'बौद्ध–शिक्षा दर्शन' तक ही

सीमित रखा गया है। वर्तमान शोध को अधिक वैज्ञानिक, तार्किक, विवेचनात्मक, बौद्धात्मक एंव वस्तुनिष्ठ बनाने के उद्देश्य से निम्न प्रकार से सीमाबद्ध किया गया हैं।

1. प्रस्तुत शोधकार्य वैधता एवं विश्वसनीयता को ध्यान रखते हुए विदेशी, यात्रियों के विवरणों बौद्ध साहित्य के साक्ष्यो तथा जातक कथाओं के आधार पर प्रस्तुत किया गया है।
2. प्रस्तुत शोधकार्य को अधिक विस्तृत न करने के उद्देश्य तथा समयाभाव को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षण केन्द्रो के आर्थिक पक्ष का विवेचन नही किया गया है।
3. प्रस्तुत शोधकार्य में बौद्ध दर्शन का संक्षिप्त परिचय दिया गया हैं तथा बौद्ध दर्शन के विभिन्न सम्प्रदायों को शोध का विषय नही बनाया गया है।
4. प्रस्तुत शोधकार्य को बौद्ध दर्शन के शैक्षिक निहितार्थो तक ही सीमित रखा गया है।
5. प्रस्तुत शोधकार्य में बौद्ध कालीन राजनैतिक व्यवस्थाओं पर विवेचना न कर मात्र शिक्षा सम्बन्धी तत्वों पर विचार किया गया है।
6. प्रस्तुत शोधकार्य को बौद्ध साहित्य की अधिक विवेचना न कर उसमें निहित शैक्षिक तत्वों पर विचार किया गया है।
7. प्रस्तुत शोधकार्य में बुद्ध के जीवन, क्रियाकलापों एंव उपदेशों को उनके शिक्षा दर्शन तक ही सीमित रखा गया है।

1.8 सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता–

किसी भी शोध प्रबन्ध में सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन की परम आवश्यकता होती है। सम्बद्ध साहित्य से हमें शोध की वस्तुस्थिति का बोध होता है। वस्तुतः सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन के बिना शोधकार्य न केवल अधूरा

रहता है अपितु शोध कार्य सही परिणाम नही प्राप्त करता है। सम्बद्ध साहित्य शोधकार्य के विषय ज्ञान की संपुष्टि करता है। सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन से जहां एक ओर शोधकार्य मे नवीन तथ्यों का अनुसंधान होता है वही स्थापित तथ्यों की प्रमाण सहित पुष्टि होती है। सम्बद्ध साहित्य शोधकार्य में नवीनता के साथ प्राचीनता का समन्वय स्थापित करता है वही मौलिकता को जन्म देता है। सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन से शोधार्थी सर्वथा संतुष्ट होकर शोधकार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न करता है।

सम्बद्ध साहित्य की शोधकार्य में महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य भूमिका होती है। सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन से शोधार्थी शोधकार्य के गुण–दोषों पर विचार करते हुए अन्वेषण कर उसका निष्कर्ष निर्धारित करता है, सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन करने पर शोधार्थी का लक्ष्य शोधकार्य को युगीन प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में देखने का रहता है साथ ही स्वतन्त्र रूप से मूल्यांकन करता है, देश और काल के महत्वपूर्ण आयामों में से जहांशोधार्थी देश या स्थान को दृष्टिगत रखते हुए उसके स्थिर या शाश्वत तत्वों के अनुसंधानों पर बल देता है।

सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन से शोधार्थी कालक्रम और युगीन संदर्भ को सर्वाधिक महत्व प्रदान करते हुए परिवर्तनशील तत्वों के विश्लेषण में प्रवृत्त होता है। शोधार्थी व्यक्ति विशेष या काल विशेष तथा कृतिविशेष का मूल्यांकन पूर्ण रूप से कर सकता है तथा व्यक्ति और कृति को सदा पूर्व परम्परा और युगीन वातावरण के संदर्भ में रखकर ही उसके योगदान को स्पष्ट करता है। सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन शोधार्थी के लिए महत्वपूर्ण व्यक्तियों एवं रचनाओं का चयन भी पर्याप्त सिद्ध हो सकता है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन से शोधार्थी जहां अतीत के सर्जन–कार्य को विभिन्न परम्पराओं और धाराओं के रूप में ग्रहण करते हुए युग विशेष के सन्दर्भ में उनका विश्लेषण करता है वहीं शोधार्थी किन्ही स्थापित मूल्यों के आधार पर या नए मूल्यों की स्थापना के

आधार पर या नये मूल्यों की स्थापना के उद्धेश्य से विभिन्न कृतियों के मूल्यपरक तत्वों का उद्घाटन करता है। अतएव सम्बद्ध साहित्य का अध्ययन शोधकार्य के लिए न केवल परमावश्यक है अपितु अत्यन्त उपयोगी है।

1.9 समस्या से सम्बन्धितशोध प्रबंधो का विवरण–

किसी भी शोधकार्य को सुचारू रूप से प्रारम्भ करने के लिए यह परमावश्यक है कि शोधार्थी को उस शोधकार्य की पृष्ठभूमि का व्यापक ज्ञान हो, इसके लिए समस्या से संबंधित शोध प्रबन्धो का अवलोकन करना चाहिए, जिससे शोधार्थी यह ज्ञात करता है कि संबन्धित विषय पर क्या–क्या कार्य किए जा चुके है। तथा क्या–क्या निष्कर्ष निकाले जा चुके है। शोधकार्य में कौन–कौन सी विधियों एंव तकनीकों का प्रयोग किया गया है। स्पष्ट है कि सम्बन्धितशोधकार्यो के पुनरावलोकन से शोधार्थी तकनीकी दृष्टि से अपने शोधकार्य को करने में समर्थ एवं सक्षम हो जाता है। शोधार्थी ने शिक्षा–दर्शन से सम्बन्धित अनेक शोध प्रबन्धों एंव ग्रन्थों का अध्ययन अपने इस उद्धेश्य की प्राप्ति हेतु किया है। विगत वर्षो में शिक्षा दर्शन के क्षैत्र में शोध कर्ताओं ने अपने शोध प्रबन्ध विभिन्न विश्वविद्यालयों में प्रस्तुत किये है।

सन् 1944ई0 से 1983ई0 तक शिक्षा दर्शन के क्षैत्र में 67 शोधकार्य किये गये। इनमें 1944ई0 से 1972ई0 के मध्य 28, सन् 1973ई0 से 1975ई0 के मध्य 7 तथा 1976ई0 से 1983ई0 के मध्य 32 शोधकार्य हुए। 1944ई0 से 1972ई0 के मध्य तीन शोधकार्य विदेशी विद्वानों की कृतियों एंव विचारों पर किए गए।

1.9.1 भारत में हुए शोध कार्य–

मैथ्यू महोदय ने 1944 ई0 में फ्रायड, एडलर एवं जुंग के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया था। गोविन्द राव महोदय ने 1955 ई0 में दस अंग्रेजी उपन्यासकारों की कृतियों में विद्यमान शैक्षिक तत्वों का विश्लेषण किया।

सन् 1969 ई0 में सिहं महोदय ने बट्रेण्ड रसेल के शिक्षा दर्शन का सम्यक विवेचन किया। सन् 1944 ई0 से 1975 ई0 के मध्य 19 शोध ऐसे हुए जो मूल रूप से आधुनिक विचारकों से सम्बन्धित थे, जिसमें गांधी प्रमुख रहे।

सन् 1956 ई0 में नायक महोदय ने गांधी के बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त तथा व्यवहार का अध्ययन किया जबकि सुबमण्यम महोदय ने 1958 ई0 में गांधी की विचारों की तुलना टैगोर के विचारों से की। सन् 1970 में राबिन्सन महोदय ने विशेषकर बेसिक शिक्षा के संदर्भ में शिक्षा में व्यवहारिकता वाद का आलोचनात्मक अध्ययन किया और बेसिक शिक्षा तथा व्यावहारिकतावाद में समान तत्वों को खोजा।

सन् 1973 ई0 में भट्ट महोदय ने तथा 1974 ई0 में सिंह महोदय ने भावे के शैक्षिक विचारों को अपने अध्ययन का विषय बनाया, भट्ट महोदय ने यह दिखाया कि भावे तथा गांधी के दर्शन में पर्याप्त साम्य है किन्तु गांधी का दर्शन देश की आजादी से जुड़ा है, जबकि भावे दर्शन सामाजिक संरचना से युक्त है।

सन् 1973 ई0 से 1983 ई0 के मध्य जो 39 शोध अध्ययन किए गए उनमें प्राचीन शिक्षा दर्शन की अधिकता रही किन्तु जो आधुनिक शिक्षा दर्शन पर शोध कार्य हुए उनमें स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक दार्शनिक विचारों को प्रमुख रूप से शोधकर्ताओं को आकर्षित किया।

सन् 1973 ई0 में मोसेन महोदय ने अपने शोध प्रबन्धो–''**स्वामी विवेकानन्द फिलासफी एण्ड एजूकेशन–ए साइकोन्मेटा–फिजिकल एप्रोच**'' में विवेकानन्द के शैक्षिक, मनौवैज्ञानिक एंव आध्यात्मिक चिन्तन का

विश्लेषण किया है। सन् 1980 ई0 में नायर महोदय ने अपने अध्ययन का केन्द्र बिन्दु स्वामी विवेकानन्द को ही बनाया।

सन् 1983 में राखी महादेय ने अपने शोध प्रबन्ध **'एजुकेशनल फिलासफी ऑफ लोकमान्य तिलक एण्ड स्वामी विवेकानन्द, ए कम्परेटिव स्टडी'** में तिलक एवं विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इस अध्ययन में नायर महोदय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि '' **शिक्षा का उद्धेश्य व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों का प्रस्फुटन ही है।**''

इस प्रकार सन् 1978 ई0 में फुदियथ तथा 1981 में चौहान महोदय ने स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन को अपने शोध अध्ययन का विषय चुना।

सन् 1981 में दत्त महोदय ने अपने शोध प्रबन्ध '' **ए स्टडी आफ दि फिलासफी आफ विवेकानन्द विद रिफरेंस टु अद्वैत वेदान्त एण्ड ग्रेट यूनिवर्सल हार्ट आफ बुद्ध**'' में प्रमुखतः विवेकानन्द के विचारों पर अध्ययन किया है। शोधकत्री ने यह दर्शाया है कि विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन में वेदान्त दर्शन तथा बौद्ध शिक्षा दर्शन दोनों का प्रभाव है। सन् 1981 ई0 में टैगोर तथा रूसों के **'शिक्षा में प्रकृतिवाद'** तुलनात्मक अध्ययन किया है।

उपरोक्त शोधकार्यो के अतिरिक्त बड़ी संख्या में प्राचीन भारतीय शिक्षा दर्शन पर भी कार्य हुए है। सन् 1971 ई0 चार्बू महोदय ने भगवतगीता के शिक्षा दर्शन पर अध्ययन किया तथा निष्कर्ष दिया कि केवल ज्ञान के द्वारा ही नही, अपितु क्रिया के द्वारा भी सीखा जा सकता है।

सन् 1955 ई0 में देशपाण्डे महोदय ने जैन शिक्षा प्रणाली पर शोधकार्य किया है, श्री देशपाण्डे ने शिक्षा के विकास, शिक्षा विधियों, परीक्षाओं तथा अन्य पहलुओं पर प्रकाश डाला है। सन् 1954 में सरन महोदय ने अपने शोध कार्य द्वारा गुरूकुल शिक्षा प्रणाली का विश्लेषण कर

संशोधित रूप में भारत में पुनः लागू करने की संभाव्यता का उद्घाटन किया है।

सन् 1980 में प्रकाशित शोधकार्य में दुबे महोदय ने उपनिषदिक शिक्षा दर्शन पर प्रकाश डाला है तथा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को उपनिषदिक शिक्षा के आलोक में सुधारने का सुझाव दिया है।

सन् 1978 ई0 में प्रकाशित शंकर के शिक्षा दर्शन पर शोधकार्य में श्री बी0डी0 शर्मा ने शंकराचार्य के मौलिक ग्रन्थों, शंकराचार्य पर लिखें गये अन्य लेखकों के ग्रन्थों सें संबंधित जनरलों के आधार पर श्री शर्मा जी ने निम्न निष्कर्ष निकाले–

1. जगद्गुरू शंकराचार्य केवल एक धार्मिक नेता तथा दार्शनिक ही नही थे, अपितु महान शिक्षाविद् थे।
2. शिक्षा प्रणाली में अध्यात्मिक एवं धार्मिक शिक्षा को बीजरूप में स्वीकार करना चाहिए।
3. गुरू–वचन–भ्रमण, वाद–विवाद तथा प्रश्नोत्तर विधियों को शंकराचार्य ने शिक्षा–विधि के रूप में स्वीकार किया है।
4. शिक्षा एक सतत् आध्यात्मिक प्रक्रिया है और तक तक चलती रहती है। जब तक ''मुक्ति'' प्राप्त नहीं हो जाती।
5. ''मुक्ति'' आत्मज्ञान से प्राप्त होती है।
6. ''मुक्ति'' शिक्षा का मुख्य उद्धेश्य होना चाहिए।

सन् 1983 में सिंह महोदय ने प्रकाशित अपने शोधकार्य**''गुरूकुल एजुकेशन एण्ड इट्स यूटिलिटी इन माडर्न एज''** निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले–

1. गुरूकुलों की शिक्षा चरित्र निर्माण, नैतिकता एवं धर्म पर बल देती है और इन्हें आज भी स्वीकार करने की आवश्यकता है।
2. गुरूकुलों में अनुशासन बनाए रखने के लिए बल दिया जाता है। वर्तमान समय में भी छात्रों एवं अध्यापकों का अनुशासित होना अनिवार्य है।

3. गुरूकुल में शिक्षक सम्यक रूप से समर्पित होते थे। आधुनिक शिक्षा की प्रगति कि लिए ऐसा होना परमावश्यक है।
4. गुरूकुलों में व्यायाम के माध्यम से शारीरिक विकास तथा साहित्य, दर्शन एवं धार्मिक नियमों के माध्यम से आध्यात्मिक विकास किया जाता था।
5. गुरूकुलों का दर्शन मुख्य रूप से विश्वकल्याण एंव सर्वहित के लिए था।
6. आधुनिक मानवता एवं भौतिकता के साथ इसे अपनाया जा सकता है।
7. गुरूकुलों का प्रबन्ध स्वयं आचार्य ही करते थे। आज की शिक्षा व्यवस्था तथा शैक्षिक प्रशासन में शिक्षकों की भागीदारी होनी चाहिए।

सन् 1951 ई0 में प्रकाशित श्री गोखले ने अपनेशोध प्रबन्ध '' **बुद्धिस्ट एजूकेशन इन इंडिया एण्ड एब्राड**'' में बौद्ध शिक्षा पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। शोधकत्री का उद्धेश्य बौद्ध शिक्षा के मूल तथा विकास का पता लगाना था। प्रस्तुत शोधकार्य में शोधकत्री ने 67 पाली, 9 संस्कृत, 2 तिब्बती, तथा 2 अर्द्ध मागधी पुस्तकों का प्रयोग किया है, कहीं–कहीं अन्य ग्रन्थों का सहारा लिया गया है। इन ग्रन्थों में 24 अन्य ग्रन्थ, 2 शब्दकोश, 25 जनरल्स एवं 115 सामान्य कोटि के ग्रन्थ है।

उपाध्याय, नारायण हरि ने (2001–02) में– ''तक्षशिला विश्व विद्यालय के शैक्षिक व्यवस्था कि प्रासंगिकता का अध्ययन'' शोध प्रबंध प्रस्तुत किया है जिसका मुख्य उद्धेश्य तक्षशिला कि शैक्षिक व्यवस्था को प्रस्तुत करना है।

शोधकर्ता ने अपने शोधकार्य में बौद्ध धर्म के विकास में लिखा है कि आरम्भ में बौद्ध धर्म एक उपासक धर्म था। सम्राट अशोक, कनिष्क और हर्ष ने इस धर्म को सरंक्षण प्रदान किया। नागार्जुन, दिड.नाग एवं वसुबन्धु जैसे सुप्रसिद्ध विद्वानों एवं दार्शनिकों ने अपने विचारों से इसे महत्वपूर्ण दर्शन दिया। इन दार्शनिकों के महत्वपूर्ण योगदान से बौद्ध धर्म

बौद्ध दर्शन बन गया। बौद्ध धर्म ने गांधार, अमरावती, मथुरा, साम्ब्री तथा आदि कलाकेन्द्रों के माध्यम से एक नवीन कला शैली को जन्म दिया। अल्प समय में ही बौद्ध धर्म अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त कर विश्वधर्म बन गया। गोखले महोदय ने लिखा है कि बौद्ध धर्म ने ब्राम्हणधर्म को प्रभावित किया तथा स्वयं भी ब्राम्हण धर्म से प्रभावित हुआ।

बौद्ध धर्म का उदय इतिहास की आवश्यकता थी, जिसकी पूर्ति कर यह धर्म लुप्त हो गया और धर्म के विकास की संक्षिप्त कथा कहने के बाद गोखले महोदय ने बुद्ध के चार आर्य सत्यों तथा अष्टांगिक मार्ग का भी उल्लेख किया है तथा विहारों तथा संघों द्वारा शिक्षा–व्यवस्था दिए जाने का उल्लेख किया। आचार्य शिष्य सम्बंधी तथा भिक्षु–भिक्षुणियों तथा स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में भी अपने विचार शोधकार्य में प्रकट किए है। **गोखले महोदय** ने अपने शोध प्रबन्ध में बौद्ध शिक्षा प्रणाली की विवेचना करते हुए बौद्ध शिक्षा प्रणाली की सराहना की।

श्री एम0सी0 मिश्र ने सन् 1982 ई0 में प्रकाशित अपने शोध प्रबन्ध में **'जातक कालीन शिक्षा का स्वरूप'** में प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति को जातक कथाओं के संदर्भ में उद्घाटित करने का सफल प्रयास किया है।श्री मिश्र ने अपने शोधकार्य में ऐतिहासिक विधि का प्रयोग करते हुए जातक कथाओं को प्रमुख स्रोत के रूप में अपनाया, कहीं–कहीं प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का सहारा भी लिया है।

कु0 किश्वर जबीं नसरीन ने 1978 ई0 में अपने शोधकार्य '' अश्वघोष की कृतियों में चित्रित भारतीय संस्कृति : एक अध्ययन'' में बौद्ध दर्शन का संदर्भानुसार तथा बौद्ध दर्शन के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डाला है।यद्यपि लेखिका का उद्धेश्य अश्वघोष है न कि बौद्ध दर्शन। लेखिका ने चार सत्यों, प्रतीत्यसमुत्पाद, क्षणिकवाद आदि तत्वों पर अति संक्षेप रूप से प्रकाश डाला है। लेखिका ने अपने शोध कार्य में बौद्ध दर्शन का संक्षिप्त रूप में उल्लेख करते हुए अश्वघोष एवं उनकी कृतियों में भारतीय संस्कृति को प्रमुखता दी।

1.9.2 विदेशों में हुए शोध कार्य :–

स्टीव स्टफी, जाकू नीस्ट एवं गायले मोडियन (11 नवम्बर 2006)

'' पाश्चात्य आधुनिकता व बौद्ध की आध्यात्मिक स्वरूप की समानता पर अध्ययन।

अध्ययन का उद्धेश्य यह ज्ञात करना था कि पाश्चात्य दृष्टिकोण–पाश्चात्य विचारों व आध्यात्मिकता को लेकर पाश्चात्य बौद्धवाद के अनुरूप कैसे है और लोगो को बुद्ध के आध्यात्मिकवाद के लिए कैसे तैयार किया जा सकता है तथा धम्म के शिक्षण जैन पादरियों तथा बुद्ध शिक्षक तथा मनोचिकित्सकों की विचार धारा कितनी अलग है ?

सान्तीकारों (14 अक्टुबर 2006) –'' बौद्ध भिक्षुक का जीवनवृंत व शिक्षाएं।''

शोध अध्ययन का उद्धेश्य सतत रूप से लोगो को उनकी शिक्षाओं से रूबरू कराना था तथा वनों मे अर्थात एकांत में सांसारिक मोह त्याग कर सत्य को, यथार्थ को प्राप्त करना था।

लोरेटटा पायल्स पी.एच.डी. (2005) –'' समाज विकास के लिए बौद्ध की गतिशील घटनाओ का समीक्षात्मक कार्य''इस अध्ययन कार्य में शोधकत्री द्वारा बौद्ध की सामाजिक गतिविधियों व सत्य की खोज तथा ज्ञान की प्राप्ति के लिए बौद्ध द्वारा किए गये घटनाओं का वर्णन किया गया है।

वेन. भिम्बु बौद्धी (15 मई 2000) – '' भूत–भविष्य और वर्तमान के सन्दर्भ में बुद्ध और बुद्ध के सन्देशों का अध्ययन''।

इस शोध अध्ययन में वेन ने पाश्चात्य बौद्ध संघ, धम्म व बुद्ध की शिक्षाओं का गहन अध्ययन कर उनके सर्वोपरि विचारो का उल्लेख किया।

होको .जोनो .के .डिची. (03 अक्टुबर 2007) –'' शैक्षिक दर्शन में बौद्ध के विचारों का गहन अध्ययन''।प्रस्तुत शोध में बौद्ध धर्म के नैतिक मूल्यों के

विकास का विस्तृत अध्ययन किया हैं। तथा शिक्षा व बौद्ध संबंधो को उजागर किया है।

डॉ. वाल्डेमर सी. सेलर (2007) –'' विश्व में बौद्ध के पद चिन्हों का अध्ययन एक दृष्टिकोण''।

प्रस्तुत शोध मे लेखक यह चिन्हित करता है कि कम्प्यूटर अध्ययन में बौद्ध के पद चिन्ह का समावेश करें तथा बौद्ध के पद चिन्हो के प्राप्ति स्थल बोधगया बिहार मे बुद्ध का जीवन किस प्रकार है, पर अध्ययन किया है।

इस प्रकार बौद्ध धर्म तथा बौद्धदर्शन पर अनेक शोध कार्य हो चुके है परन्तु आज भी बौद्ध शिक्षा दर्शन अपनी गूढ़ता के कारण शोध का विषय बना हुआ है, समाज उपयोगी शिक्षा एंव दर्शन से बौद्ध शिक्षा दर्शन उल्लेखनीय प्रगति एवं परिवर्तन ला सकता है अतएव शोध में इसी प्रकार की प्रगति एवं परिवर्तन की दिशा निर्धारित करने का प्रयास है।

द्वितीय अध्याय

2.1 चिंतक के जीवन का दर्शन–

गौतम बुद्ध और उनके धर्म के दर्शन का संसार में बहुत ऊँचा स्थान रहा है और यह दुनिया का एक मात्र धर्म है जो शांति पूर्वक अपने समय के अधिकांश देशो तथा सभ्यताओं में फैला है।

गौतम बुद्ध पूर्व के ऐसे महाचिंतक है जिनका प्रभाव जाति के चिंतन और जीवन पर किसी अन्य सेकम नही पड़ा, और धार्मिक परम्परा के संस्थापक के रूप में ऐसे धर्मप्राण है जिनका आग्रह किसी अन्य सेन कम विस्तृत है, न कम गम्भीर। विश्व–चिंतन और संस्कृत मानव जाति की विरासत में उनका अपना स्थान है। क्योंकि बौद्धिक प्रामाणिकता, नैतिक उत्कटता और आध्यात्मिक अन्तदृष्टि की कसौटी पर वे निस्सन्देह इतिहास के एक महान व्यक्ति के रूप में उतरते है।

गौतम बुद्ध का जन्म 562 ईसा पूर्व में हुआ था। वे क्षत्रियवर्णीय कपिलवस्तु के शाक्यकुलीन शुद्धोदन के पुत्र थे। कपिल वस्तु पर बाद में सम्राट अशोक ने एक स्तम्भ स्थापित किया था, जो अब तक विद्यमान है। उनका स्वंय का नाम सिद्धार्थ है और गौतम उनका बुलनाम। 'सुत–निपात' में कथा है। कि बालक को देखने आए असित नामक महात्मा ने उसके उज्जवल भविष्य के विषय में भविष्यवाणी की थी और दुख प्रकट किया था कि वह स्वंय उस दिन को देखने और नए सिद्धांत सुनने को जीवित न रहेगा।

बालक के जन्म के सात दिन बाद उसकी मां का देहांत हो गया और उसका पालन पोषण उसकी मौसी, शुद्धोदन की द्वितीय पत्नी महा प्रजावती ने किया। उचित समय पर गौतम का ब्याह यशोधरा के साथ हुआ और राहुल नामक पुत्र जन्मा।कथा हैं कि गौतम के पिता ने दुःख अनुभवों से उन्हें बचानें की पूरी सावधानी बरती थी और संयोग अथवा ईश्वरेच्छा ने उनके पथ में एक दुर्बल और जरा–जर्जर वृद्ध, एक रोगी, एक मृत मनुष्य और एक परिव्राजक सन्यासी को ला दिया। इन अनुभवों ने उन्हें धार्मिक जीवन द्वारा शांति और गम्भीरता प्राप्त करने की प्रेरणा दी। इससे ज्ञात होता है। कि वे धार्मिक वृति के थे और सांसारिक सुखः आकांक्षाए उन्हें तुष्ट नही कर सकी। सांसारिकता की ओर से उनका मन फेरने की उनके पिता की चेष्टाएं असफल रही और 29 वर्ष की अवस्था में उन्होने गृहत्याग करने सन्यासी बाना धारण किया और परिव्राजक सत्यशोधी का जीवन प्रारंभ किया।

यह महान त्याग था। धर्म के लिए भारतीय मन की लगन और लक्ष्य प्राप्ति के लिए आपत्तियां और कष्ट सहने का उनका आग्रह सांसारिकता के इस युग मे हम लोग समझ न सकेंगें। भारतवर्ष में यह सामान्य धारणा है कि सुन्दर स्थलों में, जहां शान्ति और प्रेरणा मिलती है, भूत जीवन–निर्वाह शान्ति दायक, सहज संभव है। भारत के मन्दिर और मठ या तो नदी–तटों पर है या पर्वत–शिखरो पर, और उसने धार्मिकता पर जोर देते समय धर्माभ्यास में निसर्ग और जलवायु का महत्व कभी विस्मृत नही किया।

इस सुन्दर स्थल में गौतम ने अपने–आपको उग्र तपस्या में रत कर दिया उन्होने सोचा कि जिस प्रकार घर्षण से गीली लकड़ी में आग पैदा होना संभव नही है, किन्तु सूखी लकड़ी में यह सम्भव है, उसी प्रकार वासना–विकार हीनता के बिना प्रकाश– प्राप्ति सम्भव नही है। तदनुसार उन्होने उग्र उपवास का क्रम और ध्यानमग्नता का अभ्यास प्रारम्भ किया

और अपने को 'भयंकर उत्पीड़न' दिया। इस अवधि में कई बार वे मृत्यु के द्वार तक पहुंच गए, किन्तु जीवन– समस्या का कहीं कोई हल उन्हे नही मिला।

उन्हें निश्चय हो गया कि तप–उपवास द्वारा शोध सम्भव नही है, और वे अन्य मार्ग खोजने में सचेष्ट हुए। उन्हें अपने तारूण्य में हुए रहस्यात्मक चिन्तक का अनुभव हो गया और वे उसी मार्ग के अवलम्बन में लगे।

कथा है कि संक्रान्तिकाल में बुद्ध कामदेव द्वारा आक्रान्त हुए, उसने भय–लोभ के हर उपाय द्वारा उन्हें अपने पथ से डिगाने की चेष्टा की, जो व्यर्थ रही । इससे जान पड़ता है कि उनकी अन्तरात्मा शान्त और अखण्ड नहीं थी और मानसिक उद्वेग के बाद ही वे पुरातन विश्वासों से मुक्त होकर नव–पथोन्मुख हो पाए। वे ध्यानमग्नता मे रत रहे और ध्यान की चार स्थितियां पार करके उन्होनें उसकी चरम, सीमा, आत्म–नियन्त्रण और स्थिरता प्राप्त की। उन्होने समस्त विश्व को एक नियमित व्यवस्था के रूप में देखा, जहां सचेष्टा प्राणी सुखी और दुखी होते है। रात्रि के अन्तिम प्रहर में उनका अज्ञान नष्ट हो गया, ज्ञान उदित हुआ। गौतम को बोधि प्राप्त हुई और वे बुद्ध हो गए।

बुद्ध ने स्वयं पैतालिस वर्ष तक स्थान–स्थानांतरो का भ्रमण किया और अनेक अनुयायी एकत्रित हुए। ब्राम्हण और साधु, तपस्वी और यती, परित्यक्त और अनुतप्त और कुलीन स्त्रियां इस समाज में सम्मिलित हुए। बुद्ध के कर्तव्य का अधिकांश अपने शिष्यों को शिक्षा और अपने संघ की व्यवस्था में लगा।

आज के युग में वे एक बुद्धिवादी के रूप में मान्य होते है। जब हम उनके प्रवचन पढ़ते है तो उनकी तार्किकता से प्रभावित होते है। उनके नैतिक पथ का प्रथम चरण सद्विचार और बौद्धिक दृष्टिकोण था। वे मानव जाति के आत्म दर्शन और भाग्यविधान में बाधक भ्रमजाल को दूर करने में सचेष्ट है ज्ञानवान जान पड़ने वाले किन्तु यथार्थ में अज्ञानी, अपने शिष्यों से वे प्रश्न करते है, और उनके संदिग्ध धर्म–वचनों का अर्थ स्पष्ट करते

हैं। मृत्यु के तनिक पूर्व अपने शिष्य आनन्द से बुद्ध कहते है '' मेने सत्य का प्रचार गुहा सत्य और प्रकट सत्य का भेद किए बिना किए है। क्योंकि सत्य के संबंध में, आनन्द, तथागत के पास ऐसा कुछ नही है, जैसा कोई धर्म युग बंधी मुट्ठी में अपने–आप तक सीमित रखें।''

अनेक संलापों में उन्हें अपने प्रश्नकर्ताओं के साथ सुबरात के समान तर्क करते हुए प्रदर्शित किया गया है।, जहां वे प्रश्न कर्ताओं को अनजाने में प्रारम्भिक सिद्धान्त से भिन्न सिद्धांत की मान्यता स्वीकार करने की स्थिति में ला देते है। उन्होंने अपने अनुयायियों को आध्यात्मिक स्वतन्त्रता से कभी वंचित नहीं किया। उन्हें प्रमाण स्वीकार करके सत्य की खोज त्याग नहीं देनी चाहिए। उन्हें स्वतन्त्र व्यक्ति होकर दूसरों के लिए पथ–प्रदर्शक और सहायक बनना चाहिए।

वे कहते हैः '' उन जैसे बनो, जिसकी आत्मा प्रकाशित है, उन जैसे बनों, जिनकी आत्मा आश्रय–स्थल है, जैसे किसी आधार का आसरा लेते हो, वैसे सत्य का दृढ़ आधार लो।' सबसे बड़ी प्रामाणित अपने भीतर की आत्मा की आवाज है। बुद्ध के उपदेशों मे हठवादिता नही है। विशाल दृष्टिकोण के साथ, जो उस युग में दृष्ट प्राप्य और आज के युग में असाधारण है, उन्होने विवाद का गला रोंधने से इन्कार कर दिया। असहिष्णुता उन्हें धर्म का सबसे बड़ा शत्रु जान पड़ी।

संसारभर के इतिहास में बुद्ध एक मात्र ऐसे धम्म प्रचारक है जो व्यक्ति को तर्क और विज्ञान के विपरीत किसी भी बात में विश्वास करने से रोकते है। बुद्ध कहते है, जिसे ईश्वर कहते है उससे मेरा कोई लेना–देना (संबंध) नही हैं। किसी बात को केवल इसलिए स्वीकार मत करों क्योंकि मैने इसे करने को कहा है। प्रत्येक बात अपनी तर्क बुद्धि से परखो, अन्यथा तुम तर्कशक्ति वाले मनुष्य नही हो। बुद्ध के जैसे स्वतन्त्रता किसी भी अन्य धर्म ने नही दी हैं। बुद्ध ने स्वंय को मार्गदर्शक कहा है और किसी को विशेष दर्जा नही दिया। बुद्ध धम्म मे नैतिकता पर ज्यादा जोर दिया गया है। '' अन्य धर्म में जो स्थान ईश्वर का है वहीं स्थान बुद्ध धम्म

में नैतिकता का है। बुद्ध का कहना हैं– अतः दीप भव अर्थात अपना प्रकाश खुद बनों।

2.2 बौद्ध शिक्षा दर्शन के सिद्धांत–

बौद्ध धर्म को समझने के लिए इस धर्म के मुख्य सिद्धांतो को समझना बेहद जरूरी है। गौतम बुद्ध द्वारा स्थापित बौद्ध धर्म व्यवहार, आदर्श और बेहतर मानव जीवन की ओर अग्रसर रहता है बौद्ध धर्म जिन मुख्य सिद्धांतो पर आधारित है वह निम्न है :–

1. प्रतीत्य समुत्पाद :–बौद्ध धर्म में 'प्रत्यय' का अर्थ हेतु है। अतः प्रतीत्य समुत्पाद विच्छिन्न प्रवाह को दर्शाता हैं। इसी से आचार्य नागार्जुन ने शून्यवाद को जन्म दिया है। प्रतीत्य समुत्पाद में 'प्रति' का अर्थ प्राप्ति है। 'इण' धातु गत्यर्थक है किन्तु उपसर्ग लगने से धातु का अर्थ बदल जाता है, इसलिए 'प्रति इ' का अर्थ प्राप्ति है और 'प्रतीत्य' का अर्थ 'प्राप्त कर' है 'पद' धातु सतार्थक है। 'सम+उत' उपसर्ग पूर्वक इसका अर्थ 'प्रादुर्भाव' है। प्रतीत्य समुत्पाद का अर्थ हुआ प्रत्यय प्राप्त कर प्रादुर्भाव।

भगवान बुद्ध स्वयं कहते है कि जो प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है वह धर्म को देखता है और जो धर्म को देखता है वह प्रतीत्य समुत्पाद को देखता है।

प्रतीत्य समुत्पाद को आचार्य बुद्धभोष दो भागों में बांटते है–

(1) प्रतीत्य और (2) समुत्पाद।

हेतु–समूह के प्रतिमुख होने से 'प्रतीत्य' है और अकेला उत्पन्न न होकर साथ में उत्पन्न न होने से अर्थात् पारस्परिक स्वभाव वाले धर्मो को ही उत्पन्न करने से 'समुतपाद' है। इस तरह प्रतीत्य पद से शाश्वत आदि दृष्टियों का और समुत्पाद से उच्छेद आदि दृष्टियों का प्रहाण हो जाता है

और दोनों के मध्य का रास्ता प्रतिभासित होता है। इसी से प्रतीतय समुत्पाद को 'मध्यमा प्रतिपदा' भी कहा जाता है। भगवान बुद्ध ने प्रतीत्य समुत्पाद का अनेक जगह विभिन्न प्रकार से, विभिन्न व्यक्तियों के आशय एवं अधिमुक्ति के अनुसार उपदेश दिया है।

प्रतीत्य सिद्धान्त का दार्शनिक विकासवाद में बौद्ध धर्म के भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों में हुआ है, परन्तु इसके मूल बीज सुत्तपिटक में मिलते है। भगवान ने संसार में सवर्ग दुःख व्याप्त देखकर उसके निदान पर चिन्तन किया। यह एक निर्विवाद सत्य है कि कोई वस्तु बिना कारण के उत्पन्न नही होती। इसी ध्रुव सत्य के आधार पर भगवान ने दुःख का हेतु खोजने की चेष्टा की। तत्कालीन सांख्यवादियों का मत था कि समस्त वस्तुएं सहेतुक होती है। अर्थात् 'परिणाम' हेतु में पहले से ही विद्यमान रहता है। इसके विपरीत स्वभाववादियों का एक दूसरा मत था कि सभी वस्तुएं निर्हेतुक होती है।

अर्थात् किसी भी वस्तु का कोई भी हेतु नहीं होता और वे स्वयं ही स्वभावतः घटित या उत्पन्न होती है। भगवान ने इस दोनों मतों को अतिशयवाद बताया और अपने मध्यम मार्ग की आधार नीति के अनुसार उन्होंने हेतु फलवाद का प्रतिपादन किया। इसे मज्झिम निकाय में प्रतीत्य समुत्पाद कहा गया है।

प्रतीत्य समुत्पाद के सिद्धान्त के अनुसार किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति किसी अन्य वस्तु के अस्तित्व पर निर्भर करती है। पूर्ववर्ती वस्तु के बिना उत्तरवर्ती वस्तु का उद्भव नहीं हो सकता। अतः पूर्ववर्ती वस्तु को हेतु तथा उत्तरवर्ती वस्तु को फल माना जाता है। बिना हेतु के फल असम्भव है। उत्तरवर्ती वस्तु पूर्ववर्ती वस्तु में पहले से विद्यमान नहीं होती, वह पूर्ववर्ती के द्वारा केवल निर्धारित अथवा प्रतीत्य समुत्पन्न होती है।

इस प्रकार भगवान ने सहेतुवाद एवं निर्हेतुवाद दोनों से असहमति व्यक्त करते हुए प्रतीत्य समुत्पाद का प्रतिपादन किया। प्रतीत्य समुत्पाद का नियम अटल और अमिट है। संसार के सभी सत्व इस नियम के

वशीभूत है। भूत, वर्तमान एवं भविष्य इन तीनों ही कालों में यह नियम निर्वाध लागू होता है। यह अनादि और अनन्त है। प्रतीत्य समुत्पाद जगत–सृष्टि को स्पष्टः घोतित करता है। प्रतीत्य समुत्पाद का मुख्य अभिप्राय दुःख की उत्पति समझाना था अथवा कार्य–कारण–नियम का सामान्यतः प्रतिपादन था, इस पर भी मतभेद है।

यह अवसर माना जाता है कि चिन्तन के इतिहास में प्रतीत्य समुत्पादकार्य–कारण–भाव का व्यापक रूप में सर्वप्रथम प्रतिपादन है और इसका महत्व इसी पर अवलंबित है।प्रतीत्य समुत्पाद में द्वादश अंग है, जिससे इसे द्वादशांग भी कहते है। इसमें एक अंग दूसरे के प्रत्यय से होता है। इन अंगो को 'निदान' भी कहते है। प्रतीत्य समुत्पाद को भवचक्रभी कहते है, ये द्वादशांग इस प्रकार हैः– 'अविद्या प्रत्यय से 'संस्कार', 'संस्कार' प्रत्यय से 'विज्ञान' प्रत्यय से 'नामरूप' 'नामरूप' प्रत्यय से तृष्णाः तृष्णा प्रत्यय से 'उपादान' प्रत्यय से 'भव', प्रत्यय से 'जाति', 'जाति' प्रत्यय से –जरा–मरण–शोक–परिदेव–दुःख' दौर्मनस्य और 'उपादास' होते है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण दुःख स्कन्ध का समुदाय होता है। यही प्रतीत्य समुत्पाद है।

द्वादश अंग –

1. अविद्या :

अविद्या का अर्थ है –अज्ञान'। प्रायः चार आर्य सत्यों का अज्ञान ही अविद्या है। अनित्य दुःख और अनात्मभूत जगत में आत्मा को खोजना या सुख को खोजना अविद्या है। 'अभिधर्मकोश' के भाष्यकार आचार्य वसुबन्धु पूर्वजन्म की क्लेशावस्था को ही अविद्या कहते है। आचार्य बुद्धघोष अपनी अन्यतम रचना 'विसुद्धिमग्ग' के 'प्रज्ञाभूमि' नामक अध्याय में अविद्या की व्याख्या करते हुए कहते है कि यह अविद्या ही स्कन्धों की राशि होने, आयतनों के आयतन होने, धातुओं के शून्य होने इन्द्रियों के अधिपति होने और सत्यों के यथार्थ ज्ञान को नहीं कराती । अतः यही अविद्या है।

अविद्या, अज्ञान 'अदर्शन' और मोह' इत्यादि अविद्या के पर्यावाची शब्द हैं। अविद्या संस्कार का मूल कारण भी नहीं कहीं जा सकती है क्योंकि भगवान ने स्वयं ' मज्झिम निकाय' में कहा है कि 'अविद्या' का कारण आस्रव है अर्थात आस्रव से ही अविद्या उत्पन्न होती है और फिर संस्कार आदि समस्त भव दुःखों का उत्पाद होता है। अतः अविद्या के मूल में आस्रव है और आस्रव के मूल में अविद्या। इस तरह यह भवचक्र चलता रहता है।

2. संस्कार :

संस्कार के कई अर्थ प्रचलित है, किन्तु इधर संस्कार का अर्थ ' कर्म' माना गया है। यह पूर्व जन्म की कर्मावस्था है। अविद्या वश सत्व जो भी भला बुरा 'कर्म' करता है वही 'संस्कार' कहलाता है। आचार्य बुद्धघोष संस्कृत प्रत्युत्पन्न धर्मो का अभिसंस्कार करने वाली लौकिक कुशल एवं अकुशल चेतना को ही 'संस्कार' कहते है।

यह संस्कार तीन प्रकार का होता है–

क. पुण्याभिसंस्कार

ख. अपुण्याभिसंस्कार।

ग. अनिण्जाभिसंस्कार।

संस्कार के और भी तीन विभाग किए गए हैं :–

क. काय संस्कार ।

ख. मनः संस्कार।

ग. वाक् संस्कार।

3. विज्ञान :

'विज्ञान' विजानन को कहते है जिसका अर्थ है– वे चित्तधाराएं जो पूर्वजन्म में किए गए कुशल या अकुशल कर्मो के विपाक–स्वरूप प्रकट होती है और जिनके कारण ही सत्व अपनी इन्द्रियों के विषय में जानकारी करता है। विज्ञान पत्युपन्न जीवन की वह अवस्था है जब प्राणी माता के

गर्भ में प्रवेश करता है और चेतना प्राप्त करता है। यह गर्भ अथवा प्रति–सन्धि का क्षण है, इसे उपपति क्षण भी कहते है।

4. नामरूप :

'नामरूप' में दो शब्द है– 'नाम एवं रूप'। रूप में चार महाभूत – पृथ्वी, जल, तेज और वायु तथा 'नाम' में संज्ञा, वेदना, संस्कार और विज्ञान में चार स्कन्ध आते है। दोनों को मिलाकर ही पंचस्कन्ध नामरूप कहलाते हैं। नामरूप 'विज्ञान' से होता है। जब विज्ञान माता की कुक्षि में प्रतिसन्धि ग्रहण करता है तभी से नाम रूप उत्पन्न होना शुरू हो जाता है और नाम क्रमशः सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होते है। नाम को मानसिक धर्म भी कहते है और रूप शारीरिक धर्म कहे जाते है, क्योंकि रूप से ही सत्व की काया की संरचना होती है।

5. षडायतन :

छह आयतन अर्थात् पांच इन्द्रियां और मन षडायतन कहलाते हैं। ये 'षडायतन' ही ज्ञानोत्पत्ति में सहायक होते है। षडायतनद स अवस्था का सूचन है जब सत्व माता के उदर से बाहर आता है और उसकी छह इन्द्रियां आंख, कान, नाक, जिह्वा, स्पर्श और मन पूर्णतय हो जाती है। परन्तु वह अभी तक उन्हें प्रयुक्त नहीं कर सकता।

6. स्पर्श :

इन्द्रिय और विषय के सन्निपात को स्पर्श कहते है। यह वह अवस्था है जब सत्व बाह्य जगत के पदार्थो के सम्पर्क में आता है। यह पंचन्द्रिय और मन, इन छह के भेद से छह प्रकार का होता है।

7. वेदना :

वेदना का अर्थ अनुभव करना है। इन्द्रिय और विषय के संयोग से मन पर जो प्रथम प्रभाव होता है, उसी का काम 'वेदना' है। चित से वेदना का अटूट का सम्बन्ध है। चाहे दुःख, सुख, न दुःख और न सुख रूप ही क्यों न हो। इस प्रकार वेदना भी तीन प्रकार की हो जाती है।

क. सुखावेदना।

ख. दुःखावेदना।

ग. असुखादुःखावेदना।

8. तृष्णा :

षडविषयों के प्रति प्यास का होना 'तृष्णा' है। यह आसक्ति रूप होती है। यह तीन प्रकार की होती है :–

क. काम तृष्णा।

ख. भव तृष्णा।

ग. विभव तृष्णा।

यह त्रिविध तृष्णा ही सत्व को भवचक्र में घुमाने वाली होती है। तृष्णा ही दुःख का मूल कारण है। यह विषय–भेद में छह प्रकार की होती है।

9. उपादान :

विषयों का दृढ़तापूर्वक ग्रहण करना 'उपादान' है। यह चार प्रकार का होता है :–

क. कामोपादान –अर्थात् कामवासनाओं में लिपटे रहना।

ख. दृष्टधुपादान –मिथ्या सिद्धान्तों में विश्वास करना।

ग. शीलव्रतोपादान –व्यर्थ के शीलाचार में लगे रहना।

घ. आत्मवादोपादान –आत्मा के अस्तित्व में दृढ़ आग्रह करना।

10. **भव :–**

होना मात्र 'भव' है अर्थात् पुनर्जन्म कराने वाला कर्म भव कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है –

क. उपपति भव।

ख. कर्म भव।

जिस–जिस उपादान को लेकर सत्व जिस–जिस लोक में जन्मता है, उसका वही उपपति भव कहलाता है। जो कर्म पुर्नजन्म कराने वाले होते है उन्हें कर्म भव कहते है।

11. **जाति :**

जाति अर्थात् 'जन्म'। उत्पन्न होना जाति है। सत्व पूर्वभव के कारण ही उत्पन्न होता है। जाति पंचस्कन्धों के स्फुरण की अवस्था है। 'मज्झिमनिकाय' में भगवान ने कहा है कि उन उन सत्वों का उस उस सत्व निकाय में जाति, सज्जाति, अवक्रान्ति, अभिनिर्वृति स्कन्धों का प्रादुर्भाव और आयतनों का प्रतिलाभ यही जाति है।

12. **जरामरण :**

जरा और मरण ये दो अवस्थाएं हैं। जीर्ण होना जरा है और मृत्यु होना मरण है। भगवान कहते है कि उन उन सत्वों का उस उस सत्व निकाय में जरा, जीर्णता तथा दांतो का टुटना, बालों का पकना, त्वचा का सिकुड़ना अर्थात् शरीर में झुर्रियां पड़ जाना, आयु की हानि और इन्द्रियों का पक जाना जरा है। उन उन सत्वों का उस उस सत्व निकाय से च्युत होना, च्यवनवा, भेद, अन्तर्धान, शरीर का गिरना, मृत्यु– मरण, काल, स्कन्धों का भेद (टुटना) और जीवितेन्द्रिय का उच्छेद है, यही मरण है।

'प्रतीत्य समुत्पाद' के द्वादशांगों का यही क्रम है जिससे यह भव चक्र चल रहा है। यदि जरामरण, शोक आदि को दूर करना है तो जन्म की श्रृंखला को ही तोड़ना होगा। भव के प्रत्ययों को हटाना होगा। भव के निरोध से क्रमशः उपादान, तृष्णा, वेदना, स्पर्श, षडायतन, नामरूप, विज्ञान, संस्कार और अविद्या के प्रत्ययों का भी प्रहाण होगा।

इस प्रकार प्रतीत्य समुत्पाद केवल दार्शनिक सिद्धान्त ही नहीं, बल्कि आन्तरिक और बाह्य जीवन के समस्त कार्य–कलापों के समुदाय और निरोध को प्रकाशित करने वाला है जिससे यह ज्ञात होता है कि

सत्व इसे सम्पक्तया जानकर स्वयं उनका साक्षात्कार कर उनकी मुक्ति (निर्वाण) प्राप्त कर सकता है।

त्रिलक्षण : अनित्य, दुःख और अनात्म :

1. अनित्य या क्षणिकवाद :–

बौद्ध धर्म की दृष्टि से सभी वस्तुएं संस्कृत है और जो संस्कृत है वह अनित्य है। जो नित्य तथा स्थायी प्रतीत होता है वह भी विपरिणामधर्मी तथा विनाशशील है। अतः कोई भी वस्तु नित्य नही हैं। संसार का प्रत्येक पदार्थ क्षणिक है, क्षण–क्षण परिवर्तनशील है। भगवान ने तत्वों का विभाजन तीन भागों में किया है –

क. स्कन्ध

ख. आयतन

ग. धातु

स्कन्ध पांच है –रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान। रूप – पृथ्वी, जल, तेज और वायु है। वेदना सुखदुःखानुभूत होती है। संज्ञा निमितोद्ग्रहणात्मिका है।संसार कर्म है और विज्ञान चेतना या मन है। संज्ञा संस्कार, वेदना और रूप के संसर्ग से विज्ञान की विभिन्न स्थितियां होती है। इसी से इन्हें अनित्य बतलाया गया है।

आयतन बारह है –छह इन्द्रियां (चक्षु से मन तक) और छह उनके विषय (रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श और धर्म) मिलकर बारह आयतन होते है।

अट्ठारह धातु –उपर्युक्त 12 आयतनों में उनके छह विज्ञान मिलानें पर 18 धातुएं हो जाती है। संयुक्त निकाय में भगवान ने कहा है कि चारो महाभूतों की यह काया एक, दो, तीन, चार, पांच, छह और वर्ष तक ही मौजूद देखी जाती है किन्तु जिसे चित या मन अथवा विज्ञान कहते है, वह अहर्निश दूसरा ही उत्पन्न होता है और दूसरा ही नष्ट होता है। इस तरह एक का विनाश और दूसरे का उत्पाद लगातार होता रहता है, यही

अनित्यवाद है और यही क्षणिकवाद है। इस अनित्यवाद अथवा क्षणिकवाद का जन्म प्रतीत्य समुत्पाद से ही हुआ है।

2. **दुःखवाद :–**

पालि एंव संस्कृत, बौद्ध साहित्य में प्रायः दुख की व्याख्या एक ही समान की गयी है। भगवान कहते हैं– जन्म लेना, बूढ़ा होना, मरना, शोक करना, रोना–पीटना, पीड़ित होना, चिन्ता करना, परेशान होना, इच्छित वस्तु की प्राप्ति न होना, दुःख है। जन्म, जरा, रोग, मृत्यु, शोक, क्लेश, आकांक्षा और नैराश्य सभी आसक्ति से उत्पन्न है अतः वे सभी दुःख है।

3. **अनात्म :**

अनात्म अर्थात् आत्मा का अभाव। भगवान ने आत्मा के लिए सत्काय शब्द का प्रयोग किया है। सत्काय का अर्थ सत् अर्थात् नित्य, ध्रुव और काय अर्थात् नाम (रूप के अतिरिक्त के चार स्कन्ध) किया गया है जो नित्य, ध्रुव और अपरिणामी है, यही दृष्टि रखना 'सत्काय दृष्टि' है। पञ्चोपादान स्कन्ध, जिससे काया का अस्तित्व सिद्ध होता है, उसमें नित्यादि दृष्टि रखना 'सत्काय' है। भगवान ने आत्मा के अस्तित्व का निराकरण किया है। वे इस मत को नहीं मानते कि आत्मा नित्य है, ध्रुव है, अजर–अमर है, सदा एक है, यह अनात्मवाद ही बौद्ध धर्म की दार्शनिक भित्ति है। 'महावग्ग' में भगवान ने पञ्चवर्गीय भिक्षुओं का उपदेश देते हुए आत्मा के अस्तित्व का निराकरण तथा अनात्मवाद का प्रतिपादन किया है। यहां कहा गया है कि भिक्षुओं! रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान ये सभी यदि आत्मरूप होते तो इसमें रोग न होता और हम कह सकते हैं कि यह मेरा रूप है, संज्ञा, वेदना, संस्कार और विज्ञान है और मेरे रूप, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान और वेदना ऐसे हो, ऐसे न हो, किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि वे सभी अनित्य, दुःख और विपरिणामधर्मी है। उनसे यह समझना कि 'यह मेरा है' 'यह मैं हूँ' यह मेरी आत्मा है भ्रम है।

मज्झिम निकाय है कि एक बार जब अग्निवेश गोत्री सत्वक साधु ने गौतम बुद्ध से पूछा कि आप अपने शिष्यों को कौन–सी शिक्षा देते है, तब ने उत्तर में कहा कि मैं रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान अनित्य, दुःख और अनात्म हैः इसकी शिक्षा अपने शिष्यों को देता हूँ। संयुक्त निकाय में भगवान ने कहा, '' भिक्षुओं, चक्षु तुम्हारा नहीं है रूप तुम्हारा नही है, उन्हें छोड़ोंः निर्वेद प्राप्त करो'।मज्झिम निकाय के प्रथम सुक्त 'मूलपर्यायसुक्त' में बुद्ध ने कहा है कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु तथा श्रुत, स्मृत और विज्ञान सबको न मै, न मेरा समझना चाहिए क्योंकि ये मेरे नही है और न ही इनका हूँ। यही बुद्ध का अनात्मवाद है।

अनीश्वरवाद :–

बुद्ध के अनित्य, दुःख और अनात्मवाद में ईश्वर या ब्रम्हा सदृश सृष्टिकर्ता के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। फिर भी त्रिपिटक में कई जगह जहां भी ईश्वर का जिक्र किया गया है, वहां बुद्ध ने ईश्वर का निराकरण ही किया गया है, इस तरह बौद्ध धर्म निरीश्वरवादी है।

'दीघनिकाय' के 'पथिक सुत' में ईश्वर का उपहास करते हुए बतलाया गया है कि एक समय बुद्ध भार्गव गोत्रीय परिवाज्रक से कहतें हैं, भार्गव जब मैं ईश्वर को मानने वाले श्रमणों एवं ब्राम्हाणों के पास जाकर पूछता हूँ कि ' आप क्या सचमुच ईश्वर या ब्रम्हा को सृष्टिकर्ता मानते है 'तब वे कहते है–हाँ। मै उनसे पुनः पूछता हूँ कि 'आप लोग ईश्वर के कर्तापन को कैसे श्रेष्ठ मानते है ? ऐसा पूछने पर वे उल्टा मुझसे पूछते है, मै उनको इस प्रकार समझाता हूँ बहुत दिनों के बीतने पर इस संसार का प्रलय हुआ फिर चिरकाल बाद लोक की उत्पति हुई। लोक की उत्पति होने पर शून्य ब्रम्हा विद्यमान प्रकट हुआ। कोई सत्व आयु क्षय होने पर उसमें उत्पन्न हुआ। बहुत समय हो गया। अकेले रहने के कारण उसमें ही वह ऊब गया और भयभीत भी हुआ। उसका मन हुआ कि अच्छा ये, दूसरे सत्व भी यहां आवे। दूसरे सत्व भी आयु क्षीण होने पर

शून्य ब्रम्हा विभा में उत्पन्न होते है। जो सत्व वहां पहले था उसके–मन में होता है कि मै ब्रम्हा हूँ। कर्ता, निर्माता, श्रेष्ठ, स्वामी, भूत तथा भविष्य के सत्वों को जन्म देने वाला पिता हूँ। मैने ही इन सत्वों को उत्पन्न किया है। मेरे ही चित में ऐसा पहले हुआ था कि दूसरे सत्व यहां आवे। इसी कारण वे यहां आये है जो सत्व उसके बाद उत्पन्न होता है कि यह ब्रम्हा, ईश्वर, कर्ता है क्योंकि यह मुझसे पहले यहां था और हम लोग पीछे आए हैं।

इस प्रकार दूसरे सत्व काया को छोडकर इस लोक में आते हैं, समाधि को प्राप्त कर उससे पूर्वजन्म का स्मरण करते है, तबवह कहता है जो वह कहता है जो वह ब्रम्हा, ईश्वर है, कर्ता है, वह नित्य ध्रुव, शाश्वत, निर्विकार और सदा के लिए तद्रूप रहने वाला है और हम लोग उसके ही द्वारा उत्पन्न किए गए है अतः अनित्य, अध्रुव, अल्पायु, एवं मरणशील है। इस तरह ईश्वर के कर्तापन को श्रेष्ठ बतलाया गया है।

इस प्रकार सुतों में ईश्वर का खण्डन किया गया है। बुद्ध का मंतव्य है कि ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं है, जो इस लोक का सृष्टिकर्ता हो, इस लोक का संचालक हो। सभी सत्व अपने कर्मो से इस लोक में जन्में है। अपने कार्मो का, अच्छे–बुरे का फल भोगते है। सत्व बिना जाने–बूझे अन्धे के पीछे चलने वाले अन्धों की भांति ईश्वर और उसके लोक पर विश्वास रखते हैं। कोई भी त्रैविध ब्राम्हणों में ऐसा नहीं है जिसने ब्रम्हा या ईश्वर को अपनी आंखो से देखा हो। अतः ईश्वर नही है, न ही कोई सृष्टिकर्ता है। यह लोक अनादि और अनन्त तथा अनिर्मित है। यही बुद्ध का अनीश्वरवाद है।

निर्वाण :–'निर्वाण' निर उपसर्ग पूर्वक वन या वान शब्द से निष्पन्न हुआ है। बौद्ध धर्म में 'वन' शब्द विशिष्ट महत्व रखता है। यहां 'वन' का अर्थ प्रायः 'तृष्णा' किया गया है और निर्वाण का अर्थ तृष्णा से निवृत्त होना अथवा तृष्णा का विरोध, क्षय, विराग ही निर्वाण है। निर्वाण का एक दूसरा

अर्थ भी विद्वानों ने किया है–बुझना या शान्त होना। जैसे दीपक स्नेह (तेल) अथवा बाती के शेष न रहने पर शान्त हो जाता है वैसे ही इस सत्व के पंचस्कन्धों का निर्वाण प्राप्त होना, उपरम हो जाना, और राग, द्वेष एवं मोह से जो विमुक्त हो जाता है, वही निर्वाण है।इस प्रकार वह परम शान्ति को प्राप्त करता है।

बौद्ध धर्म में निर्वाण का काफी महत्व है।निर्वाण बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य है बौद्ध धर्म की चरम परिणति निर्वाण मे ही होती है। यद्यपि बौद्ध सम्प्रदायों में निर्वाण को लेकर काफी मतभेद है, फिर भी ऐसा कोई सम्प्रदाय नही है, जिसने निर्वाण के सिद्धान्त की चर्चा न की हो। निर्वाण की प्रथम व्युत्पति स्थिरवाद, वैभाषिक और सौत्रांतिक मत के अधिक समीप है और दूसरी कुछ आगे विकसित होकर महायान दर्शन की एक झलक प्रस्तुत करती है, जहां निर्वाण को शान्त और सुख–रूप माना गया है, फिर भी दोनों यानो में एकमात्र अन्तिम उद्देश्य निर्वाण या परिनिर्वाण लाभ ही रहा है।

यद्यपि महायानी केवल व्यक्तिगत निर्वाण की इच्छा नहीं रखता, वह समस्त सत्वों के निर्वाण के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है।

अभिधर्मकोष भाष्य में निर्वाण को तृष्णा का सर्वथा प्रहाण, जयन्तीभाव, क्षय, निरोध व्युपशम, अस्तंगम इत्यादि बतलाया गया है। वह दुःखों का अत्यन्त, अनुत्पाद, अप्रादुर्भाव बतलाया गया है। 'संयुक्त निकाय' में इसे शान्तिप्रणीत, समस्त उपाधियों का निरूद्ध होना, तृष्णाक्षय कहा गया है। धम्मपद में निर्वाण को 'अमृतपद' कहा गया है। मज्झिम निकाय में इसे ही अनुतर योगक्खेम बतलाया गया है। उदान में इसे असंस्कृत एवं 'इतिवृत्तक' में अनुत्पन्न और अकृत बतलाया गया है।

आर्य निर्वाण का समाधि में साक्षात्कार करते हैं। इससे यह अनिर्वचनीय है। बुद्ध ने इसे निरोध, अव्याकृत किया है। 'उदान' में निर्वाण को

'अचलपद' कहा गया है। ' अंगुत्तर निकाय' में उदायी शारिपुत्र से पूछते है। निर्वाण में सुख कैसे हैं? शारिपुत्र उत्तर में कहते है कि निर्वाण अमृत है। निर्वाण सुखावेदना का अभाव ही है, निर्वाण संज्ञावेदित निरोध के सदृश है। 'महावग्ग' में भगवान स्वयं कहते है कि उन्होंने अमृत का लाभ किया है और वे दूसरों के भी अमृत का द्वार खोलते है।

शारिपुत्र और मौद्गलायन ने बौद्ध दीक्षा लेने के पूर्व परस्पर यह तय किया था कि हममें से जो भी पहले अमृत (निर्वाण) की खोज करेगा, वह एक दूसरे को जरूर बतलाएगा और निर्वाण प्राप्त होते ही शारिपुत्र का चेहरा प्रसन्न नजर आता है।

आचार्य नागसेन ने 'मिलिन्दप्रश्न' में निर्वाण का सूक्ष्म विवेचन किया है। आचार्य का कहना है कि तृष्णा का निरोध हो जाना निर्वाण है। पंचस्कन्धों का निःशेषतः रूक जाना, उनका सर्वथा लुप्त हो जाना निर्वाण है। आचार्य कहते हैं कि जिस प्रकार जलती हुई आग की लौ बुझने पर पुनः दिखाई नहीं देती, उसी प्रकार निर्वाण–प्राप्त सत्व भी दिखाई नहीं पड़ता। निर्वाण में दुःख लेशमात्र भी शेष नहीं रह पाता, निर्वाण सुख ही सुख है। निर्वाण महासमुद्र की तरह अनन्त सुख का भण्डार है, क्लेशों से अलिप्त है, शान्त है, न पैदा होना, न पुराना होना, न मरना, और न आवागमन को ही प्राप्त करना है, निर्वाण दुर्विज्ञेय है। अच्छी राह पर चलकर संसार के सभी संस्कारों को अनित्य दुःख तथा अनात्मरूप देखकर सत्व प्रज्ञालाभ से निर्वाण का साक्षात्कार तथा शान्ति–लाभ कर सकता है।

तृतीय अध्याय

3.1 बौद्ध दर्शन का शैक्षिक चिंतन–

महात्मा बुद्ध के उपदेशों एंव शिक्षा का आधार आचार–विचार था। उन्होनें आचार पर विशेष महत्व दिया, यदि यह कहा जाए कि बुद्ध की सम्पूर्ण देशना एक नैतिक आचार–संहिता थी तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

बुद्ध देशना में न केवल कोरी दार्शनिक मीमांसा थी, न कोरी साधनाचार्य अपितु यथाकथचित व्यवहार के सहारे परमार्थ की ओर संकेत था। चार आर्य सत्यों का विस्तृत निरूपण भगवान बुद्ध की भारतीय दर्शन को महत्वपूर्ण देन है।

3.1.1 चार आर्य सत्य –

प्रथम आर्य सत्य–दुःख :–पालि एंव संस्कृत बौद्ध साहित्य में प्रायः दुःख की व्याख्या एक समान ही की गयी है। भगवान कहते है, जन्म लेना, वृद्ध होना, मरना, शोक करना, रोना–पीटना, पीड़ित होना, चिन्ता करना, परेशान होना, इच्छित वस्तु की प्राप्ति न होना दुःख है। यह दुःख तीन विभागों में विभाजित किया गया है। 1. दुःख दुःखता 2. संस्कार दुःखता और 3. विपरिणाम दुःखता। पृथ्वी पर ऐसा कोई स्थान नही है जहां पर मृत्यु का शासन न हो, जीवन दुःखों से परिपूर्ण है। सभी वस्तुएं जो

उत्पन्न हुई है, दुःख, अनित्य और अनात्मरूप है। बुद्ध कहते हैं कि सम्पूर्ण जीवन में दुःख छाया हुआ है। एवं यह सर्वव्यापी है।

धम्मपद में कहा गया है–''न तो आकाश में, न समुद्र के अन्तस्तल में और न पर्वत की कन्दराओं में, संसार में कहीं भी ऐसा स्थान नहीं मिलेगा जहाँ मृत्यु के आक्रमण से बचा जा सके।जन्म, जरा, रोग, मृत्यु, शोक क्लेश, आकांक्षा एवं नैराश्य, सभी आसक्ति से उत्पन्न है, अतः वे सभी दुख है। संसार में जो कुछ भी सुख की सामग्री दिखलाई पड़ती है वह सब बिना संस्कार–दुःखता के प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि उनकी प्राप्त के लिए अनेक कष्टसाध्य प्रयत्न करने होते है। अतः वे सभी प्रयत्न संस्कार–दुःख हैं। सत्व सुख, लाभ के लिए एकानेक दान, पूजा, अर्चना, भेंट, शील, आचार आदि पुरूषार्थ करते है। ये सभी दान आदि प्रयत्न भी संस्कार दुख ही है। अतः दुःख हेय है, त्याज्य है।

2. **दुःख समुदाय आर्य सत्य :–** दूसरा आर्य सत्य है दुःख समुदाय। समुदाय का अर्थ कारण है– दुःख समुदाय अर्थात –'दुःख का कारण'। संसार में दुःख ही नही बल्कि उसका कारण भी है। बिना कारण के कार्य नहीं होता, जब कार्य है तब उसका कारण भी अवश्य है। दुःख का कारण तृष्णा है! तृष्णा ही एक ऐसी है जो (सत्व का) पुनर्भव कराने वाली है। नन्दी (आसक्ति) और राग से युक्त है, यहां वहां (यत्र–तत्र) आनन्द खोजने वाली है। जन्म और मरण के चक्र को चलाने वाली तृष्णा ही दुःख का मूल कारण है।

दुःख के आदि कारण के विषय में बुद्ध कहते है – ''यथार्थ में प्रबल तृष्णा ही है,जिसके कारण बार–बार जन्म होता है और उसी के साथ इन्द्रिय सुख आते हैं, जिनकी पूर्ति जहां तहां से की जाती है–'' अर्थात् इन्द्रियों की तृप्ति के लिए प्रबल लालसा अथवा सुख समृद्धि की प्रबल लालसा ही दुःख का कारण है।''

3. **दुःख निरोध आर्य सत्य :–**निःशेष दुःख के रोध अर्थात् रूक जाने को 'दुःखनिरोध' है। तृष्णा का नाश होने से 'उपादान' का निरोध होता है,

'उपादान' के निरोध से 'भव' का 'भव' से जाति, जरा–मरण, शोक, दुःख दौर्मनस्य और उपायास का निरोध हो जाता है। इस प्रकार समस्त दुःख का निरोध हो जाने से 'निर्वाणलाभ' होता है। राग–द्वेष एवं मोह के क्षय को निर्वाण कहते है। यह दृष्टि भव–निर्वाण है। इसी जन्म में इसका साक्षात्कार कर निर्वाण–सुख का अनुभव करते है। निर्वाण ही बौद्ध धर्म का अन्तिम लक्ष्य है। '' निर्वाण'' शब्द का अर्थ है '' बुझ जाना'' अथवा '' ठंडा होना''। बुझ जाने से विलोप हो जाने का संकेत है। ठंडा हो जाने का तात्पर्य सर्वथा शून्य भाव नहीं है बल्कि ऊष्णतामय वासना का नष्ट हो जाना है। बुद्ध का आशय केवल मिथ्या इच्छा का विनाश करना था, जीवन मात्र का विनाश करने से नहीं था।

4. दुःखनिरोधगमिनी प्रतिपद् आर्य सत्य –

प्रतिपद् का अर्थ है मार्ग। दुःख निरोध करने के उपायभूत मार्ग को दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद् कहते है। इस मार्ग के आठ अंग है– सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक्, सम्यक क्रमान्त, सम्यक आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक स्मृति एंव सम्यक समाधि।

3.1.2 अष्ठांग मार्ग –

1. सम्यकदृष्टि :–

सम्यकदृष्टि अष्टांगिक मार्ग की प्रथम सीढ़ी है। इसका अर्थ है – ठीक अथवा यथार्थ दृष्टि। यह दर्शन और ज्ञान से युक्त होती है, वस्तुओं का जैसा स्वरूप है, उनका उसी रूप से ज्ञान और दर्शन होना ही सम्यकदृष्टि है। लोक परलोक, माता पिता, दान, हुत, अच्छे–बुरे कर्मो का फल–विपाक है, ऐसा ज्ञान होना ही सम्यकदृष्टि है। 'अभिधम्मपिटक' के 'विभग' ग्रन्थ में चार आर्यसत्यों के ज्ञान को ही 'सम्यकदृष्टि' कहा गया है। संसार दुःख से पीड़ित है, सत्व तृष्णाजाल में आबद्ध है। वह इस जाल से मुक्त हो सकता है, मुक्त होने का उपाय भी है। इसे जानना, सम्यक

रूप से इनका दर्शन करना ही 'सम्यकदृष्टि' है। जो कुशल और अकुशल को जानता है उसे भी सम्यकदृष्टि कहा गया है। नाम और रूप धर्मो में अनित्या, दुःखता एवं अनात्मता का विचार करने वाला ज्ञान 'विपश्यना लौकिक सम्यकदृष्टि' है।लोकोतर मार्ग एवं फल में सम्प्रयुक्त ज्ञान अर्थात् आर्य अष्टांगिक मार्ग में होने वाला ज्ञान लोकोतन सम्यकदृष्टि कहलाता है। यह लोकोतर, सम्यकदृष्टि भी दुःख को जानने, समुदय सत्य का प्रहाण करने, निरोध सत्य का साक्षात्कार करने और मार्ग सत्य की भावना करने में चार प्रकार की हो जाती है।

2. **सम्यक संकल्प –**

सम्यक् संकल्प सम्यक् दृष्टि की ही उपज है। यह त्याग के लिए तीव्र इच्छा है, सबके साथ मिलकर प्रेम पूर्वक जीवन बिताने की आशा (संकल्प) है, एवं यथार्थ मनुष्य जाति के निर्माण की महत्वाकांक्षा है। पृथकता के विचार को त्यागकर महत्वाकांक्षी व्यक्ति सम्पूर्ण जगत के लिए कार्य करता है। संकल्प यथार्थ होना चाहिए। सम्यक–संकल्प को निष्काम–संकल्प, अल्पवाद–संकल्प एवं अविहिंसा संकल्प कहा गया है अर्थात् राग–द्वेष–वर्जित संकल्प ही सम्यक संकल्प है। दृढ़–संकल्प रखने वाला महत्वाकांक्षी व्यक्ति सदैव प्राणिनाम के कल्याण के लिए तत्पर रहता है।

3. सम्यक् वाक्–

सम्यक संकल्प कर लेने के उपरान्त सम्यक वाक् का अभ्यास किया जाता है। **'' सम्यक वाक् का तात्पर्य है, असत्य से दूर रहना, किसी की चुगली करने से अपने को बचाना, कठोर भाषा के प्रयोग से बचना एवं निरर्थक वार्तालाप से दूर रहना।''** धार्मिक कथाएं प्रलाप नहीं होतीं, अतः धार्मिक कथाओं की चर्चा करना अथवा आर्य–मौन का पालन करना ही सम्यक् वाक् कहलाता है। दूसरे शब्दों में मृषावाद, पैशून्य, परूषता इनसे विरति सम्यक् वाक् है।

4. सम्यक् कर्म –

सम्यक् कर्म निःस्वार्थ कर्म का नाम है। प्रथावाद अथवा रीतिबन्धन प्रार्थना, उपासना, कर्मकाण्ड, वशीकरण एवं जादू–टोना, मनुष्य अथवा पशु की बलि दिए जाने वाले यज्ञ–योग आदि में बुद्ध का कोई विश्वास नहीं था। **''धर्म पर आरूढ़ पुरूष के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना सौ वर्ष तक अग्नि पूजा करते रहने से कहीं श्रेष्ठ है।''** सम्यक् कर्म अहिंसायुक्त भावना से किए जाते हैं। संक्षेप में, सम्यक् कर्म उन कर्मो को कहा जाता है जो सांसारिक प्राणियों पर अनुकम्पा करने के आशय से लिए जाते है।

5. सम्यक् आजीव –

सम्यक् आजीव अर्थात् ठीक अथवा यथार्थ आजीविका। सम्यक् आजीव का अर्थ है सत्वों के जीवनयापन के सत्साधन। इस संसार में हजारो सत्व हजारों तरह से अपनी–अपनी जीविका चलाते है। भगवान बुद्ध ने स्वयं 'दीर्घनिकाय' के ब्रम्हाजाल सुक्त में सत्वों की नाना आजीविकाओं का वर्णन करते हुए कहा है कि सत्व अपने जीवन का निर्वाह कैसे–कैसे साधनों को अपनाकर करते है। लोग विष, शस्त्र, सत्व, मंदिरा, मांस बेचकर, झूठे नाप–तौल से ग्राहको को धोखा देकर, देकर, झांसों, नौकरों एवं जानवरों का व्यापार आदि करके अपना जीवन–निर्वाह करते है, ये ही सब मिथ्या आजीव है और इन्ही आजीविकाओं का सहारा न लेकर सदाचरण से जीवन–यापन करना ही सम्यक् आजीव है।

6. सम्यक् व्यायाम –

'व्यायाम' का अर्थ यहां 'प्रयत्न' अथवा 'पुरूषार्थ' है। अकुशल धर्मो का त्याग करना और कुशल धर्मो का उपार्जन करना ही सम्यक् व्यायाम है। यह चार प्रकार का होता है –

1. अनुत्पन्न अकुशल कर्मो को उत्पन्न न करना।
2. अनुत्पन्न कुशल कर्मो को उत्पन्न करना।
3. उत्पन्न अकुशल कर्मो का प्रवाण करना।
4. उत्पन्न कुशल कर्मो का संरक्षण करना।

7. सम्यक् स्मृति –

स्मृति का अर्थ स्मरण है। सम्यक् स्मृति का अर्थ हुआ ठीक स्मरण, यथार्थ स्मृति। स्मृति हिताहित का अन्वेषण कर, अहित का त्याग कर हित का आदान–प्रदान करती है, कुशल धर्मो की ओर ले जाती है। स्मृति जिसकी जितनी दृढ़ होगी वह उतना ही जागरूक और सावधान होगा तथा ज्ञान–लाभ में बढ़ा–चढ़ा रहेगा। स्मृति आलम्बन में प्रवेश कर विषय को निश्चित रूप से चित्त में स्थिर करती है। लोभ और दौमर्नस्य को दूर कर काय, वेदना, चित्त और धर्म अर्थात् मन के विषयों के प्रति जागरूक, प्रयत्नशील, ज्ञानयुक्त, सावधान रहना ही सम्यक स्मृति है। 'सम्यक् स्मृति' को बौद्ध धर्म में काफी महत्व दिया गया है। यह ज्ञान प्राप्ति एवं विशुद्धि तथा निर्वाण का साक्षात्कार कराने का एकमात्र मार्ग है। भगवान बुद्ध बारम्बार इसी कारण अपने शिष्यों को स्मृति और सम्प्रज्ञान से युक्त रहने के लिए आदेश देते हैं। इसी से **'बोधिचर्यावतार'** में कहा भी गया है कि **' नरक की पीड़ा का स्मरण करते हुए भी स्मृति को मन से क्षण भर के लिए भी नहीं हटाना चाहिए। सदा जागरूक, स्मृतिवान भिक्षु ही तृष्णाजाल को काटकर निर्वाण प्राप्त करता है।'**

8. सम्यक समाधि –

कुशल चित की एकाग्रता को 'समाधि' कहा गया है। समाधिस्थ भिक्षु, क्रोध, आलस्य, उद्धतपना, पछतावा और सन्देह से विगत होता है। उसे सांसारिक लाभ थोड़ा भी नहीं डिगा सकते। वह तत्वों पर महाकरूणापूर्ण चित्त से वितरण करता है, वह उपेक्षावान् होता है, वह पंचस्कन्धों को दुःख, अनित्य और अनात्मरूप समझता है। योगी भिक्षु सभी संस्कारों का शमन कर, तृष्णा का प्रहार कर निर्वाण–लाभ करता है।

सम्यक् समाधि में चार ध्यान आ जाते है, जो निम्न प्रकार है :–

I. वितर्क, विचार, प्रीति, सुख एवं एकाग्रता नामक पांच ध्यानांगों सहित प्रथम ध्यान होता है।

II. अध्यात्म सम्प्रसाद, प्रीति, सुख एवं एकाग्रता नामक चार ध्यानांगो सहित द्वितीय ध्यान होता है।

III. उपेक्षा, स्मृति, सम्प्रदाय, सुख और समाधि से युक्त पांच ध्यानांगो सहित तृतीय ध्यान होता है।

IV. दुःखासुखावेदना, उपेक्षापारिशुद्धि, स्मृतिपारिशुद्धि और समाधि इन चार ध्यानांगों सहित ध्यान होता है।

3.2 राष्ट्रबौद्ध –

बौद्ध धर्म एंव भारतीय संविधान

बाबा साहेब डॉ अम्बेडकर ने कहा था– मैं भारत बौद्ध मय करूंगा उनके इस कथन की पुष्टि करने के लिए मेरा प्रश्न यह है कि– भारतीय संविधान कौनसे धर्म पर आधारित है :–

26 जनवरी 1950 को भारत का संविधान लागू किया गया था। भारतीय संविधान के कारण महात्मा बुद्ध तथा सम्राट अशोक के देश का, एक नये रूप में संविधान के निर्माता बाबा साहेब डॉ अम्बेडकर जी ने भारतीय संविधान के माध्यम से, दुनिया के सामने भारत देश को पुनः स्थापित किया। भारत को ''बुद्ध का देश'' के नाम से जाना जाता रहा है।

1. बुद्ध धर्म का प्रतीक – आकाशीय नीला रंग है।
2. बुद्ध धर्म का प्रतीक –''कमल का फूल'' राष्ट्रीय फूल है।
3. बोधि वृक्ष – ''पिपल के वृक्ष'' को राष्ट्रीय वृक्ष की मान्यता दी गई है।
4. बुद्ध धर्म, धर्म के ''धर्म चक्र'' को राष्ट्रीय चिन्ह की मान्यता दी गई और राष्ट्रीय झंडे मे धर्म चक्र अंकित किया गया है।

5. सम्राट अशोक की राजधानी चार सिंह वाली मुद्रा के प्रतीक को भारत देश की राजमुद्रा घोषित की गई है।
6. बुद्ध धर्म के मार्ग समता, स्वातन्त्रय, न्याय व विश्व बंधुतव को भारतीय संविधान ने स्वीकृति दी है।
7. सम्राट अशोक के –'' सत्यमेव जयते'' को भारतीय शासन व्यवस्था में ब्रीद वाक्य की स्वीकृति दी है।
8. विश्व में भारत को पहचान बौद्ध संस्कृति के कारण मिली है।
9. राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा में पहला रंग जिसे हम लाल, केशरी, भगवा (ऑरेंज) कहते है। उस कलर को भारतीय संविधान में एक विशेष नाम वर्णित किया गया है अंग्रेजी में इसे ओशर कहा जाता है। ओशर – लाल–पिला मिट्टी जैसा होता है, जो बौद्ध भिक्षु के चिवर का रंग है और यह त्याग का प्रतीक है।
10. दूसरा सफेद रंग – सफेद रंग को बौद्ध धर्म में विशेष महत्व है सफेद रंग शान्ति एंव सत्य का प्रतीक है, बौद्ध उपासक/उपासिका शील ग्रहण करते समय सफेद वस्त्र पहनते है।
11. तीसरा हरा रंग – जो कि निसर्ग, प्राणियों से प्रेम करना, बुद्ध धर्म के पंच शील का आचरण करना है।
12. तिरंगे के बीच मे बुद्ध धर्म का प्रतीक धर्मचक्र नीले रंग में अंकित किया गया है।
13. समस्त ब्रहमांड में बौद्ध धर्म की पहचान दिलाता है हमारा राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा। इसे संविधान मसोदा समिति के अध्यक्ष बाबा साहेब डॉ अम्बेडकर ने देश को समर्पित किया।
14. भारत के सर्वोच्च नागरिक पुरस्कार का नाम– बुद्ध धर्म से संबंधित है। भारत रत्न की बुद्ध धर्म की पदवी, बुद्ध, धर्मसंघ तीनों बुद्ध धर्म के त्रिरत्न है।

15. ''भारत रत्न'' चिन्ह का भी बौद्ध धर्म से गहरा संबंध है। बोधि वृक्ष के '' सोनेरी पान'' जिस पर पुरस्कार स्वीकारने वाले व्यक्ति का नाम सोनेरी में अंकित किया जाता है। और दुसरे बाजु में चार सिंह वाली राजमुद्रा व धर्मचक्र रहता है।
16. बुद्ध धर्म के मैत्री, प्रेम व करूणा का प्रतीक कमल के फूल को संविधान कमेटी ने '' राष्ट्रीय पुष्प'' की मान्यता दी है। कमल के फूल को बुद्ध के चरणों में अर्पित किया जाता है।
17. युद्ध शौर्य में तीन प्रमुख पुरस्कार है–

    परमवीर चक्र, महावीर चक्र व वीर चक्र– पुरस्कारों में कमल का फूल विराजमान हैं। पाली भाषा में कमल के फूल को पद्म कहा जाता है।
18. प्रमुख पुरस्कार का नाम ''अशोक चक्र'' है।
19. राष्ट्रपति भवन के प्रमुख हाल का नाम ''अशोक हाल'' है।
20. हमारे केन्द्रीय मंत्रीमण्डल के निवास स्थान के परिसर का नाम बुद्ध संस्कृति पर रखा जाता है, सम्राट अशोक के मंत्रीमण्डल के नगर का नाम भी ''जनपथ'' था। इसलिए जनपथ नाम रखा गया है।

इस प्रकार भारत की पहचान करने वाली प्रत्येक प्रतीक का बुद्ध धर्म से संबंध है। विडम्बना है कि समस्त प्रतीक चिन्ह रंग, भाषा आदि अद्धेतवाद धर्म के शंकराचार्य व मनुवादियों ने अपना कहकर प्रचारित व प्रसारित कर रखा है। आज जरूरत है बाबा साहेब के कारवां को आगे बढ़ाने की और इतिहास की सही जानकारी की, जिससे हमारे समाज के लोग आज तक अनभिज्ञ है। बाबा साहेब ने सारी सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षणिक व कानूनी व्यवस्था संविधान के माध्यम से हमारे समक्ष रख रखी है। जरूरत है बस उसे गम्भीरता से अमली जामा पहनाने की।

3.3 बौद्ध दर्शन की शैक्षिक विचारधारा–

बौद्ध युग में शिक्षा के केन्द्र विहार, संघ एवं विश्वविद्यालय के रूप में विख्यात विशाल केन्द्र थे। बौद्ध नियमों तथा ग्रन्थों में शिक्षा देने की किसी अन्य व्यवस्था का उल्लेख नहीं मिलता है। धार्मिक तथा लौकिक सम्पूर्ण बौद्ध शिक्षा बौद्ध भिक्षुओं के हाथ में थी। वे ही शिक्षा के अभिरक्षक का कार्य करते थे। बौद्ध संघ तथा धर्म में दीक्षारम्भ संस्कार ब्राह्मण पद्धति से मिलता जुलता है।

बौद्ध शिक्षा में पहला कदम था पवज्जा जिसका अर्थ होता है, आगे चलना यह विद्यार्थी का विद्यालय में प्रवेश होता था। संघ में प्रविष्ट होने पर सामान्य व्यक्ति को किसी गुरू की देख–रेख और अनुशासन में रहकर अध्ययनादि कार्य करने पड़ते थे। इस प्रकार की दीक्षा के लिए नियम न्यूनतम आयु आठ वर्ष थी, कहीं–कहीं छः या सात वर्ष में पवज्जा दी जाती थी।

छात्रावस्था का काल बारह वर्ष होता था। गंभीर शारीरिक या नैतिक दुर्बलता संघ के प्रवेश में बाधा थी। प्रथम दीक्षा सरल थी, इसमें विद्यार्थियों को केश मुंडन करवाना, पीत वस्त्र धारण करना होता था, उसके बाद बुद्ध, धर्म एवं संघ इन तीनों की शरण की प्रतिज्ञा करना सम्मिलित था। बालक भिक्षु को किसी गुरू की देख–देख में रहने से पहले दस आदेश दिए जाते थे, जिनका पालन अनिवार्य था।

दो प्रकार के शिक्षकों का उल्लेख प्राप्त होता है, उपाध्याय और आचार्य। उपाध्याय उच्चतर प्राधिकारी होता था और उसका उत्तरदायित्व था भिक्षु को धार्मिक ग्रन्थों तथा सिद्धान्तों की शिक्षा प्रदान करना , जबकि आचार्य पर भिक्षुके आचरण को नियमबद्ध एंव नैतिक बनाने की जिम्मेदारी थी। सामान्य भिक्षु के शिक्षा–प्रशिक्षण की अवधि दस वर्ष नियत थी मेधावी छात्रों के लिए इस अवधि को घटाकर पांच वर्ष भी किया जा सकता था। बौद्ध शिक्षा में शिष्य को शिक्षा के अंग के रूप में अपने गुरू की सेवा करने के आदेश दिए जाते थे। महावग्ग और 'मिलिन्दपन्ह' में आदर्श गुरू के पच्चीस और शिष्य के दस गुण गिनाए गए है। उपाध्याय के अधीन

उतने ही नवीन शिष्य होते थे जितना कि वह सभांल सके। आचार्य शिष्यों को स्वास्थ्य, अध्ययन, शिष्टाचार, सदाचार और आत्मिक उन्नति को प्रशस्त रखने की प्रेरणा देता था।

विद्यार्थियों की पाठ्य चर्चा में सुत्त, धम्म और विनय धर्म भी सम्मिलित होते थे। बौद्ध शिक्षा सामान्यता सुत्तनों (प्रवचनों) से प्रारम्भ होती थी, तत्पश्चात अभिधम्म (धर्म) की अपेक्षाकृत सूक्ष्म बातें सिखायी जाती हैं। मौखिक रीति द्वारा शिक्षण कार्य की प्रधानता थी, लेखन कला का विकास हो चुका था ललित विस्तर में चौसठ प्रकार की लिपियों का उल्लेख मिलता है, परन्तु मौखिक विधि द्वारा अध्यापन कार्य श्रेष्ठ माना जाता था। नियमित शिक्षकों के अतिरिक्त प्रसिद्ध विद्वानों द्वारा जो अपने विषय के विशेषज्ञ माने जाते थे, शिक्षा दिलाने का विशेष प्रबंध किया जाता था। उपालि भी इस प्रकार का विद्वान था जो विनय ग्रन्थों के विशेषज्ञ के रूप में जाना जाता था। शिक्षा के साधन के रूप में धार्मिक प्रवचनों को सुनना बौद्ध शिक्षा की एक प्रमुख विशेषता थी। विचार–विमर्शो तथा वाद विवाद पर भी बल दिया जाता था, इनसे बौद्ध संघ की लोगों को बौद्ध धर्म में शिक्षा–दीक्षा की गतिविधियों को अभिप्रेरणा प्राप्त होती थी। समय–समय पर पाप स्वीकृति के लिए किए जाने वाले धार्मिक समारोह भी, जिनमें भिन्न–भिन्न विहारों से भिक्षु आकर एकत्रित होते थे, शैक्षणिक विचार विमर्श के लिए वाक्पीठ का काम देते थे।

बौद्ध दर्शन मे शिक्षा का अत्यधिक प्रभाव पड़ा, सुप्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु जो समकालीन विद्वानों से किसी भी दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं थे, ने बौद्ध साहित्य पर विभिन्न ग्रन्थों की रचना कर बौद्ध दर्शन को उत्कृष्टता दिखलाई। बौद्ध दर्शन इतना समुन्नत हो गया था कि विदेशों से बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में अध्ययनार्थ विदेशी छात्रों का आगमन होता था। बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार प्रसार हुआ जिसका प्रमुख कारण बौद्ध शिक्षाएं थीं। बौद्ध शिक्षा भारत के एक कोने से आरम्भ होकर भारत की सीमाओं को लांघता हुआ लंका, वर्मा, तिब्बत, जावा, सुमात्रा, चम्पा, चीन, जापान, स्याम आदि को

पार करके मध्य एशिया तक जा पहुंचा। बौद्ध शिक्षाओं ने विदेशों पर गहरी छाप छोड़ी इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे–

1. बौद्ध धर्म की शिक्षाओं की सरलता ही इसका प्रमुख कारण हैं बुद्ध की जीवन सम्बन्धी दार्शनिकता साधारणतय नियमों पर आधारित थी। इसकी शिक्षाओं में वैदिक कालीन शिक्षाओं की तरह धन और पुरोहित की व्यवस्था नहीं थी। इस कारण बौद्ध दर्शन में शिक्षा का विस्तार तीव्र प्रभाव से हुआ।
2. बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली में दार्शनिकता तथा भाषा सरल तथा सुगम थी। बौद्ध कालीन शिक्षा पद्धति में भाषा जनभाषा थी जिससे सामान्य जनता के लिए भी बौद्ध शिक्षा ग्राह्य हो गयी।
3. बौद्ध दर्शन जाति प्रथा का विरोधी था। इस धर्म के दरवाजे सभी के लिए खुले थे, बौद्ध शिक्षा प्राप्त करने के लिए सभी विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार किया जाता था। बौद्ध कालीन शिक्षा में वैश्यों और शूद्रों ने बढ़ चढ़ कर विद्या अध्ययन किया, समानता का व्यवहार अपनाने से बौद्ध शिक्षा का प्रचार–प्रसार हुआ।
4. वैदिक कालीन को ब्राम्हाणों द्वारा खर्चीला बना दिया गया, नए नए कर्मकाण्डों तथा नवीन धार्मिक नियमों की बहुलता वैदिक शिक्षा के प्रति जनसाधारण को शिक्षा प्राप्ति से वंचति कर देती थी। परन्तु बौद्ध शिक्षा निःशुल्क तथा कर्मकाण्डरहित थी।

   बौद्ध शिक्षा के अन्तर्गत जहां किसी भी वर्ण का, निर्धन–धनी शिक्षा प्राप्त कर सकता था, वहीं शिक्षा प्राप्ति के बाद अध्यापन कार्य भी कर सकता था। बौद्ध कालीन शिक्षा में किसी भी प्रकार का बंधन न होने से बौद्ध शिक्षा सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य हो गयी।
5. बौद्ध कालीन मठों, विहारों, एवं संघों ने बौद्ध शिक्षा का प्रसार–प्रचार करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मठों, विहारों तथा

संघों में शिक्षा अत्यधिक अनुशासनबद्ध वातावरण में निष्पक्षता के साथ विद्वान एवं सदाचारी आचार्यों द्वारा प्रदान की जाती थी इस कारण बौद्ध शिक्षा का प्रसार तीव्र गति से हुआ।

6. बौद्ध कालीन शिक्षा का स्वरूप व्यवसायपरक भी था जिससे शिक्षा का महत्व बढ़ा और जनसाधारण ने इसे उपयोगी जानकर शिक्षा ग्रहण करना आवश्यक समझा।
7. बौद्ध शिक्षा दर्शन में शिक्षा के उद्देश्यों के अनुरूप शिक्षा का पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया था। जहां एक पाठ्यक्रम में ऐसे विषय रखे गये थे, जिनसे आध्यात्मिक का विकास होता था, वहीं दूसरी ओर व्यवसायपरक शिक्षा दी जाती थी, ताकि विद्यार्थियों का भविष्य सुरक्षित रहे। शिक्षा को व्यापक स्वरूप देने के कारण बौद्ध शिक्षा का प्रभाव बढ़ा।
8. बौद्ध कालीन शिक्षा ने विद्यार्थियों को दार्शनिक विवेचना के जाल में नही फंसाया अपितु जो छात्र दार्शनिक विवेचना में पारंगत होना चाहता था, उसे दार्शनिक विवेचना द्वारा पूर्ण ज्ञान कराया जाता था, जनसाधारण के लिए दर्शन के कठिन तथा क्लिष्ट रहस्यों का ज्ञान आवश्यक नहीं था, जन साधारण विवेकानुसार अपनी क्षमतानुसार विषय चुनकर शिक्षा ग्रहण कर सकता था। इस कारण बौद्ध शिक्षा का प्रसार हुआ।
9. बौद्ध शिक्षा व्यवहारिक थी, बौद्ध शिक्षा निरर्थक दार्शनिक वाद विवाद में नहीं उलझी, जिसका सामान्य जीवन से सम्बन्ध नहीं था। आत्मा और परमात्मा के आध्यात्मिक विवेचन से हटकर बौद्ध शिक्षा में सांसारिक समस्याओं की और ध्यान दिया, जिससे जन सामान्य में बौद्ध शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ा।

10. अश्वघोष, नागार्जुन, बुद्धघोष, अंसग, वसुवन्धु, बुद्धपाण, दिग्नाग, धर्मकीर्ति आदि जैसे महान विद्वान एवं ज्ञानियों ने अपने ज्ञान द्वारा बौद्ध कालीन शिक्षा के प्रसार में चार चांद लगा दिए।
11. प्रारम्भ में भगवान बुद्ध द्वारा संघ में स्त्री प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाया था, कालान्तर में भगवान ने स्त्री को संघ में प्रवेश की अनुमति दी, तथा पबज्जा संस्कार की अनुमति देकर स्त्री शिक्षा की अनुमति दी, परिणामतः स्त्रियां भी बौद्ध शिक्षा के प्रति आकृष्ट हुई तथा शिक्षा प्राप्त कर अपनी हीन होती जा रही स्थिति को रोक दिया तथा शिक्षा प्राप्त कर समाज में सम्माननीय स्थान पाया।

प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति ने विश्वविद्यालयीय शिक्षा के साथ–साथ धर्म व नैतिकता पर सकेन्द्रित शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। यह शिक्षा मुख्यः धार्मिक संगठनों द्वारा संचालित होती थी। इस परम्परा का विस्तार बौद्ध धर्म की स्थापना से ही आरम्भ हो गया किन्तु धर्म आधारित शिक्षा में धर्म सिद्धान्तों का संकेन्द्रण अधिक रहता है। इसलिए सम्राट अशोक ने धम्म महामात्य स्त्री एवं ब्रजभूमिक अधिकारियों की नियुक्ति करके धम्म उपदेशों का विस्तार किया। इन मूल प्रयोजन जनमानस का नैतिक उत्थान करना था।

इसी लोकप्रिय विचारधारा की प्रस्तुति दीर्घ शिलालेखों व स्तम्भलेखों में होता है। अशोक के उपरान्त सातवाहन, कुषाण, गुप्त, गुप्तोतर पल्लव, राष्ट्रकूट व चोल शासकों ने ग्रामीण व शहरी क्षैत्रों में अग्रहार व ब्रम्हादेय संस्थाओं को मजबूत किया। इनका मूल प्रयोजन शिक्षा, सामाजिक नैतिकता एंव दायित्वपूर्ण समाज को बनाये रखना था। इनका सकारात्मक परिणाम यह रहा है कि समाज में अशान्ति व अनैतिकता कम रही।

महत्वपूर्ण यह रहा है कि अग्रहार व ब्रम्हादेय दानग्रहीता, बौद्ध व ब्राम्हाण धर्मो से सम्बन्धित थे। धीरे–धीरे इनके द्वारा प्राथमिक शिक्षा का भी विस्तार किया गया। इसी विचारधारा का बाद में सूफी खानकाओं एवं

मदरसों ने भी स्वीकार किया। हालांकि इनमें धर्म तत्व की प्रधानता रही। इनके अतिरिक्त बौद्ध मठ व विहार भी शिक्षा के लिए जाने जाते थे। इनका मूल प्रयोजन विशाल भिक्षु वर्ग को बनाना था जो धर्म व उससे जुड़े सिद्धान्तों का अनवरत् संरक्षण कर सके। इस प्रकार हम देखते है कि बौद्ध शिक्षा सर्वसुलभ थी, इसमें धार्मिक कर्मकाण्डों एवं वर्णभेद की कोई जगह नहीं है। धनी–निर्धन स्त्री पुरूष सभी को समान मानकर शिक्षा प्रदान की जाती थी जिसके कारण बौद्ध शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ है,

बौद्ध शिक्षा का माध्यम जनभाषा होने के कारण बौद्ध शिक्षा का प्रचार–प्रसार सर्वत्र हुआ। बौद्ध धर्म विदेशों में फैलने लगा, सुदूरवर्ती देशों में भी बौद्ध शिक्षा का प्रादुर्भाव हुआ जो आज भी विद्यमान है। बौद्ध कालीन शिक्षा का विस्तार जनसाधारण के मध्य तीव्र गति से हुआ। बौद्ध शिक्षा ने अपनी सरलता का जनसाधारण पर अत्यधिक प्रभाव डाला। बौद्ध शिक्षा का प्रभाव न केवल जन सामान्य पर था अपितु अनेक राजपरिवारों, राजाओं, धनी व्यक्तियों पर भी बौद्ध शिक्षा का प्रभाव पड़ा। बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में अनेक राजपरिवार, कुलीन तथा धनी परिवार अपने पुत्रों को शिक्षा प्रदान कराने हेतु उत्सुक रहते थे। बौद्ध शिक्षा के सतत रूप ने देश में एक नवजागरण का वातावरण पैदा कर दिया। इस प्रकार हम पाते हैं कि बौद्ध शिक्षा का समाज पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा जिससे बौद्ध धर्म का विस्तार जनसाधारण में तीव्र गति से हुआ।

चतुर्थ अध्याय

4.1 बौद्धदर्शन का मीमांसात्मक स्वरूप –

(ज्ञान मीमांसा)

दिगनाग के अनुसार ज्ञान के केवल दो ही साधन है, प्रत्यक्ष और अनुमान।विज्ञप्तिमात्रता या स्वलक्षण प्रत्यक्ष का विषय है और सामान्य लक्षण या वस्तुएं अनुमान का।

प्रत्यक्ष :–

दिगनाग के अनुसार निर्विकल्प है और नाम, जाति, द्रव्य, गुण तथा क्रिया आदि बुद्धि–विकल्पों से असंपृक्त है।चूँकि प्रत्यक्ष ऐसी अवस्था है जहां नाम, जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया आदि कोटियां जिनके द्वारा हम किसी वस्तु के विषय में ज्ञान प्राप्त करते है, का अस्तित्व ही नही, अतः प्रत्यक्ष के विषय स्वलक्षण के सम्बन्ध में हम विध्यात्मक रूप से कुछ भी नहीं कह सकते। हम जो कुछ भी वर्णन करते है वह सामान्य लक्षण है अर्थात स्वलक्षण का वह रूप जिसे हमने बुद्धि की कोटियों में आबद्ध कर लिया है।

अनुमानः

किसी ज्ञात वस्तु के आधार पर किसी अज्ञात वस्तु के ज्ञान को अनुमान कहते है। अनुमान में तीन पद हेतु होते हैं–

क. पक्ष

ख. हेतु या लिंग।

ग. साध्य।

अनुमान के लिए यह आवश्यकता है कि हेतु और साध्य के बीच सम्बन्ध हो और द्रष्टा को उस सम्बन्ध का पूर्वज्ञान हो। उदाहरणार्थ किसी स्थान पर धुआं देखकर अग्नि का अनुमान वहीं व्यक्ति लगा सकता है और यह जानता है कि जहां–जंहा धुआं होगा वहां–वहां अग्नि अवश्य होगी। वात्स्यायन के अनुसार किसी हेतु या लिंग के पूर्वज्ञान के आधार पर किसी विषय के ज्ञान को अनुमान कहते है।भगवान बुद्ध तत्वमीमांसक थे, ज्ञान मीमांसक थे, या नैतिक आचार पर उपदेशक थे? यह प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद है। आध्यात्म एवं शास्त्रीय प्रश्नों पर सर्वथा मौन धारण कर भगवान ने इस प्रश्न को अत्यन्त जटिल बना दिया है।

बुद्ध देशना पर गहराई से विचारोपरान्त निष्कर्ष निकाला जाता है कि वास्तव में बुद्ध तत्वमीमांसक थे, ज्ञानमीमांसक भी थे तथा नैतिकता एवं सदाचार के उपदेशक भी थे।

भगवान बुद्ध ने भौतिकवादियों के विपरीत प्रत्यक्ष के अतिरिक्त प्रमाण को भी स्वीकार किया है। बौद्ध मत में केवल कारण एवं कार्य के मध्य सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है, जबकि नैयायिक अन्य प्रकार के भी सतत साहचर्य के दृष्टान्तों को अनुमान के अन्तर्गत स्वीकार करता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार हम कार्य के कारण का अनुमान कर सकते है किन्तु न्याय दर्शन के अनुसार कारण से कार्य का अनुमान करने के अतिरिक्त लक्षणों के द्वारा उपलक्षित वस्तुओं की सत्ता का भी अनुमान कर सकते है। सींग रखने वाले सब पशुओं के खुर फटे होते है, यह एक आनुभविक सामान्य अनुमान है जो अनुभव की सीमा के अन्दर सही निकलते देखा गया है, यद्यपि यह नितान्त सत्य नहीं भी हो सकता है। जहां तक परम सत्य का प्रश्न है, भगवान ने जगत के आदि कारण एवं अन्तिम लक्ष्य पर विचार करने से निषेध किया है, उन्हें वास्तविक जीवन से ही तात्पर्य है, परम यथार्थ सत्ता से ही।

बुद्ध की पद्धति दर्शन पद्धति न होकर एक प्रकार का यान या सवारी है, जिस पर बैठकर मोक्ष तक पहुंचा जा सकता है। बुद्ध अनुभव का

विश्लेषण करते हैं उनके यथार्थ स्वरूप में भेद करते हैं, वे संसार की नित्यता अथवा अनित्यता के विवाद में नही फंसना चाहते है। भगवान अपने ध्यान को इस संसार तक ही सीमित रखते है और देवताओं को एकदम नहीं छूते, इसी प्रकार देवताओं सें भी यही आशा करते है कि वे भी उनके ध्यान में बाधा नहीं डालेंगे।

भगवान ने किसी भी विषय का उन्होंने सर्वथा निराकरण नहीं किया अपितु पृष्ठभूमि को खुला छोड़ दिया जिस पर कोई भी सिद्धान्त संबंधी पुनर्रचना की जा सकती है। अध्यात्मशास्त्र सम्बन्धी समस्याओं के प्रति वे सर्वथा उदासीन थे। उनका केवल यही मत था जिसकी व्याख्या नहीं जा सकती है जा अनिवर्चनीय है, उसका निर्वचन करने का प्रयास करना व्यर्थ है।

भगवान ने आध्यात्म विषय समस्याओं पर मौन की स्थिति एवं अनिर्णय को उनके शिष्यों के लिए खुला छोड़ दिया। इसीलिए परवर्ती बौद्ध आचार्यो ने अपने–अपने दृष्टिकोंण स्वतंत्र रूप से ज्ञान तथा यथार्थता की व्यापक व्याख्या की। नागसेन ने सर्वोपरि यथार्थ सत्ता एक निराधार धारणा बनाई वह ज्ञेय एवं अज्ञेय के बीच के भेद का खंडन करता है। वस्तुओं का ज्ञान उनकी दृष्टि में सापेक्ष नहीं रह जाता। यह यथार्थ एवं निरपेक्ष है, अनुभव से परे कुछ नहीं। यथार्थ एवं अनुभवजन्य उसके मत में एक समान हैं। सापेक्ष भी परमतत्व है। सच्ची आध्यात्म विद्या का सिद्धान्त वही है जो अनुभव का सिद्धान्त हो, न कि जो पृष्ठभूमि में अपने को पर्दे में छिपाए हो। आगे चलकर बौद्ध दर्शन की एक शाखा योगाचार विज्ञानवाद का जन्म होता है।

योगाचार दर्शन के अनुसार मन से बाहर संवेदना को कोई स्रोत नहीं है। ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञेय सब एक ही है, ज्ञान ही ज्ञान को देखता है। वस्तुतः भगवान का लक्ष्य मनुष्यों को दुःखों से छुटकारा दिलाना था, उन्होंने इस कटु सत्य का अनुभव किया कि मनुष्य दुःख से पीडित है, इसे दुःख से मुक्ति मिलनी चाहिए। इसी क्रम में भगवान ने बताया कि दुःख का मूल कारण अज्ञान है। इस अज्ञान को दूर करके ज्ञान को प्राप्त करके दुःख से

मुक्ति पायी जा सकती है। ज्ञान प्राप्त करने के लिए भगवान ने अष्टांगिक मार्ग बताए। इनका अनुकरण करने पर मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता है, उसकी समस्त इच्छाएं, एषणाए, आस्रव, तृष्णा, राग, द्वेष, मोह निरोधित हो जाती है। वह जन्म–मृत्यु के भवचक्र से मुक्त हो जाता है, उसे निर्वाण प्राप्त हो जाता है। यह निर्वाण ही परम सत्य है। इस प्रकार ज्ञान प्राप्त होने पर परम सत्य की अनुभूति होती है। कहा गया है कि निर्वाण ही नित्य एवं सत्य है, संसार अनित्य होने के कारण मिथ्या है। भगवान ने 'परम सत्य' पर विचार नहीं किया है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि वे परम सत्य को नहीं जानते थे।

वस्तुतःभगवान जनसाधारण के अन्दर उन सत्यों की घोषणा नहीं करते थे क्योंकि उन्हें भय था कि कहीं उनके मन विचलित न हो जायें। उनका विचार था कि परम सत्य को बताया नहीं जा सकता। यह तो अनुभव की वस्तु है। वास्तविक ज्ञान हो जाने पर इसका अनुभव किया जा सकता है। वास्तविक ज्ञान अष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करके ही संभव है। इस प्रकार भगवान नें ज्ञान प्राप्त करने के साधन के रूप में अष्टांगिक मार्ग का निरूपण किया है।

भगवान मनुष्य के ज्ञान की सीमाओं से परिचित थे और इसीलिए उन्होंने तर्क द्वारा जानने योग्य विषय एवं अज्ञेय विषय के मध्य परिधि की रेखा खींच दी। भगवान ये अनुभव करते थे कि हमारी इन्द्रियां परिणत पदार्थो का ज्ञान प्राप्त कर सकती है और परिणत वस्तुएं वास्तव में सत् नहीं है। मनुष्य के मन की पहुंच से यथार्थ सत्ता हमेशा ही बाहर रहेगी क्योकि मनुष्य स्वंय अविद्या की उपज है। ऐसा ज्ञान जो मै और तू में भेद करता है, परम ज्ञान नहीं है। मनुष्य एंव सत्य के बीच ऐसा आवरण है जिसके बीच में प्रवेश करना कठिन है तो भी यह सत्य अथवा ज्ञान जिसे हम प्रत्यक्ष नहीं कर सकते या नहीं जान सकते, अयथार्थ नहीं है।

विज्ञानवादियों के अनुसार ब्रह्म वस्तु का अस्तित्व ही नही, अतः उसके ज्ञान का प्रश्न ही नही उठता। उसके अनुसार अनुमान का विषय

बुद्धि–कल्पित सामान्य लक्षण है। वे स्पष्ट रूप से कहते है कि हेतु और साध्य (धर्म–धर्मी–सम्बन्ध) सम्बन्ध पर आधारित अनुमान का किसी बाह्य वस्तु के अस्तित्व या अभाव से सम्बन्ध नही हैं।

4.2 बौद्ध शिक्षा के मूल्य –

बौद्ध दर्शन नैतिकता पर सर्वाधिक बल देता है और नैतिकता के माध्यम से व्यक्ति के अंदर तथा समाज में मूल्यों की स्थापना करना चाहता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार अणुओ से निर्मित इस संसार में चेतना प्रमुख है। बौद्ध दर्शन अवैदिक, अनात्मवादी, एवं अनीश्वरवादी होते हुए भी नैतिकतावादी, तर्कवादी एवं आदर्शवादी है। आत्मा क्षण–क्षण परिवर्तित चेतना की अविरल धारा है। प्रत्यक्ष एवं अनुमान को ज्ञान के साधन मानते हुए बौद्ध दार्शनिक अनुभवात्मक ज्ञान को आवश्यक बताते है और प्रत्येक अनुभव को विवेक की कसौटी पर रखते है। वे तर्कबुद्धि को प्राथमिकता देते है।

शारीरिक,सामाजिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों को बौद्ध महत्वपूर्ण मानते है। भगवान ने जिस पवित्रता, सदाचार एवं सदाचार के आधार पर अपने सिद्धान्तों का प्रचार प्रसार किया और जिस सफलता से भगवान विश्व में महान गुरू, शान्ति गुरू, महान उपदेशक के रूप में पूज्य हो गए, उसकी आचार आज्ञाएं भी उतनी महान थी, भगवान को भिक्षुओं एवं
गृहस्थों के 'पंचशील' सिद्धान्त की स्थापना की–

क. प्राणातिपात विरति– जीव हत्या नही करें।

ख. अदत्ता दान–विरति– अदेय वस्तु ग्रहण न करें।

ग. मृषावाद–विरति– असत्य वचन न करें।

घ. सुरा–मैरेय–प्रमाद–स्था–विरति–मद्यपान का सेवन न करें।

ड़. काम–मिथ्याचार–विरति– व्यभिचार न करें।

भगवान के कट्टर धार्मिकों के लिए अधोलिखित तीन नियमों का पालन करना परमावश्यक कहा–

च. अकाल–भोजन–विरति– कुसमय भोजन को त्याग करें।

छ. माल्य–गंध–विलोपन विरति– सुगंधित पदार्थो का त्याग करें।

ज. उच्चासन शयन–विरति– भूमि पर शयन करें।

भगवान ने भिक्षुओं के लिए उक्त उपदेशों के अतिरिक्त निम्नलिखित दो अन्य नियमों का पालन करना आवश्यक बताया है–

झ. नृत्यगीत–वादित–विरति– नृत्य–संगीत का त्याग।

ट. जातरूप–रजत–प्रतिगृह विरति– सोना–चांदी का त्याग।

अतएव भिक्षुओं के लिए दशशील का पालन परमावश्यक है, परन्तु गृहस्थों के लिए 'पंचशील' का पालन करना आवश्यक बताया है। भगवान ने इन्द्रिय संयम को परमावश्यक कहा है। भगवान कहते है कि जिनके इन्द्रिय द्वार अगुप्त हैं, जो भोजन की मात्रा का विचार नहीं करता उसकी आत्मा तथा शरीर दोनों कष्ट पातें हैं। संप्रजन्य एवं स्मृति से आत्मरक्षा होती है, ये दोनों द्वारपाल की भांति चित्त की गलत कर्मो से रक्षा करते हैं।

भगवान ने तीन अकुशल वितर्क बताएं है–काम, व्यापाद और विहिंसा। इसका परित्याग करना चाहिए। तीन कुशल वितर्को का नैष्क्रम्य, अव्यापाद और अविहिंसा का संग्रह करना चाहिए। भगवान ने उपदेश दिया कि '' **अक्रोध से क्रोध को जीतो, साधुता से असाधु को जीतो, कदर्य को दान से और मृषावादी को सत्य से जीतो।**'' भगवान ने महामंगल सुत्त में कहा कि माता–पिता की सेवा, दान, अनवद्यकर्म, एवं धर्मचर्चा ये उत्तम मंगल हैं ब्रह्मचर्य, तप, आर्य सत्यों का दर्शन निर्वाण का साक्षात्कार ये उत्तम मंगल हैं ब्रह्मचर्य, तप, आर्य सत्यों का दर्शन निर्वाण का साक्षात्कार ये उत्तम मंगल हैं। भगवान ने राग, द्वेष, मोह को अकुशल मूल कहा है।

इनका प्रहाण होना चाहिए, क्योंकि राग के समान कोई अग्नि है, द्वेष के समान कोई कलि नहीं है।

आचार संबंधी महत्वपूर्ण नियमों का उल्लेख हमें '' सिंगालोवाद सूत्र'' में किया गया है। इस ग्रन्थ से तत्कालीन सामाजिक जीवन के आदर्श का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। अपने बच्चों को धार्मिक शिक्षा और सांसारिक सुख देने के लिए माता–पिता की उत्सुक भावना, माता–पिता के पालन करने, उनका सत्कार करने एवं मृत्यु के उपरान्त आदरपूर्वक उनका स्मरण करने के लिए पुत्र की भक्तिपुर्ण अभिलाषा, शिष्य का अपने गुरू के प्रति सत्कार का व्यवहार और गुरू की शिष्य के लिए चिन्ता तथा प्रेम, पति का अपनी पत्नी के साथ सत्काम, दया, मान, और प्रीति के साथ व्यवहार, पत्नी का गृहस्थी के कार्यो में सावधान रहना, स्वामी–नौकर में, गृहस्थों–धार्मिकों एवं मित्रों के मध्य जो दया का भाव रखने का जो उपदेश या शिक्षाएं है, इन्हीं नियमों तथा सर्वोत्तम जन सुलभ शिक्षाओं के कारण तत्कालीन समाज में बौद्ध धर्म आध्यात्मिक, सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों की स्थापना करने में समर्थ हुआ। भगवान ने उपासक को धर्म–श्रवण का उपदेश किया, उपवास–व्रत रखना चाहिए, भिक्षुओं का दान देने का उपदेश दिया, तथा चार तीर्थो कपिलवस्तु, बौद्ध गया, सारनाथ तथा कुशीनारा की यात्रा करने का उपदेश दिया।

भगवान नेभिक्षुओं को उपदेश दिया कि तृष्णा का विनाश किए बिना दुःख का अत्यन्त निरोध नहीं होता, तृष्णा का विनाश करने से विशुद्धि होती है, इस विशुद्धि के अधिगम का उपाय बताते हुए 'संयुक्त–निकाय' में भगवान ने कहा–''**जो मनुष्य शील में प्रतिष्ठित है, समाधि और प्रज्ञा की भावना करता है, वह प्रभावन् और वीर्यवान भिक्षु इस तृष्णा जटा का नाश करता है।**

भगवान कहते है कि सर्वपाप से विरित ही शील है, जब योगी प्रज्ञा से देखता है कि संस्कार अनित्य तथा दुःख है, सर्वधर्म अनात्म है, तब दुःख का निरोध होता है। प्रज्ञा, शील तथा समाधि को बौद्धों ने शिक्षात्रय'

कहा है। यह बौद्ध धर्म–दर्शन का मूलाधार है तथा यही विशुद्धि का भी मार्ग है। जो भिक्षु शिक्षापदों की रक्षा करता है, जो आचार–गोचर सम्पन्न है अर्थात जो मनसा, वाचा तथा कर्मणा का अनाचार नहीं करता और योग क्षेम चाहने वाले कुलों का आसेवन करता है, जिसकी इन्द्रियां संवृत्त हैं जो अजीव के लिए पाप धर्मो का आश्रय नहीं लेता अर्थात जिसका आजीव परिशुद्ध है, जो परिष्कारों का उपयोग प्रयोजनानुसार करता है जो शीतोष्ण से शरीर रक्षा के लिए और लज्जा के लिए चीर धारण करता है, भिक्षु अणुमात्र भी पाप से डरता है। शरीर को विभूषित करने के लिए नहीं, जो भिक्षु शरीर की स्थिति के लिए आहार करता है, उस भिक्षु का शील परिपूर्ण माना गया है, इस प्रकार शील सम्पन्न होकर ही समाधि की भावना करनी चाहिए। शील सम्पन्न सुभावित चित्त में राग को अवकाश नहीं मिलता है। भगवान हमें आन्तरिक द्वन्द्व में से, जो मानव जीवन का एक विशिष्ट लक्षण है, निकालने का मार्ग दर्शातें हैं। भगवान के उपदेशों का लक्ष्य दुःख से छुटकारा पाना है। नैतिक जीवन का उद्धेश्य इस विस्तृत असाधु जीवन से बच निकलना है।

बुद्ध के अनुसार अपने आपको विनष्ट करना ही मोक्ष है। भगवान ने निर्वाण को उच्चतम लक्ष्य कहा एवं उपदेशना दी कि आचरण की ऐसी सब विधियां जो हमें निश्चित रूप में निर्वाण की ओर ले जाती है, शुभ है और उनके विपरीत सभी कर्म अशुभ है अर्थात शुभ कर्म वे है जो वासनाओं, इच्छाओं एवं अहं की भ्रान्त भावनाओं के ऊपर हमें विजय प्राप्त करने का मार्ग दर्शन करते है जबकि अशुभ कर्म वे है जो हमें दुःखदायी दण्डभोग की ओर ले जाते हैं। शुभ कर्म लोक कल्याणकारी होते हैं, जबकि अशुभ कर्म स्वार्थपरता को जन्म देते हैं।

इस प्रकार भगवान के उपदेशों मे लोकमंगल भावना के सर्वत्र दर्शन होते है। वस्तुतः भगवान के इसी पवित्र संकल्प ने बौद्ध दर्शन को सर्वव्यापी एवं सर्वग्राह्य बना दिया।

4.3 बौद्ध नीतिशास्त्र–

नीतिशास्त्र केवल इसलिए महत्वपूर्ण नही है कि यह एक समाज को बनाता है, बल्कि उससे भी अधिक उस व्यक्ति के व्यक्तिगत संतोष की दृष्टि से और महत्वपूर्ण है जो नीतिपरक है या गैर–नीतिपरक, नैतिक प्रवृत्तियों तथा समाज के लिए सफलता की स्थिति बनाती है। सुख–शांति और नीतिशास्त्र किसी की सुख शांति को प्रभावित करता है, जबकि सुख–शांति भी नैतिक प्राथमिकताओं को प्रभावित करती है।

भारत में बौद्ध दर्शन गहन बौद्धिक और सामाजिक विक्षुब्धता के काल में उत्पन्न हुआ था। यह वह काल था जब ईश्वर की सर्वशक्ति और सृजकता पर प्रश्न चिन्ह, जाति की गतिशीलता और जन्मजात पांबदियों पर आघात होने लगे और न्यायवादियों के ज्ञानशास्त्र ने दार्शनिक विमर्श की आधारशिला रखी, वास्तविक दुनिया को तर्क और विवेक आधारित खोजो के लिए प्रेरणा दी थी और बोझिल कर्मकांडो एवं अविवेक अंधविश्वासो के बोझ से छुटकारा दिलाया।

यद्यपि हर एक पंथ ने दर्शनशास्त्र में मौलिक और रोचक योगदान दिया तब भी, पूर्ववर्ती बौद्ध ने एक एकीकृत दार्शनिक पद्धति देने की कोशिश की जिसमें नैतिक आचरण और सामाजिक समीक्षा दोनों उनकी सेद्धांतिक पद्धति के मर्म में थें। उपलब्ध बौद्ध ग्रन्थों की कुछ नीति कथाएं अज्ञेयवाद की सूचना देती है उदाहरण स्वरूप बौद्ध अनुयायियों के लिए आदेश था कि उन्हे उलझे हुए आध्यात्मिक प्रश्नों पर समय नही गंवाना चाहिए जैसे कि ''क्या ईश्वर है'' भगवान की पहचान की खोज, उसके स्वरूप की खोज आदि निरर्थक प्रश्न माने जाते थे।

ईश्वर के खिलाफ बौद्धो का तर्क था कि यदि एक सर्वशक्तिमान अथवा सर्वत्र ''ईश्वर'' जैसा कुछ होता और जिसे सम्पूर्ण रूप से शुभ ही माना जाता था तो फिर वास्तविक दुनियां में चहुंओर दुख क्यों फैला है। बौद्ध दर्शन के केन्द्र मे मानव स्वभाव और दुख के कारण की समझ ही थी।

विभिन्न दुखों का सामना करने के लिए बौद्धो ने एक सूत्रा– '' चार–मूल्य'' दुःखो को समझने के लिए प्रतिपादित किया।

1– दुख

2– दुख के कारण को ढुढ़ना

3– उस समस्या के निवारण का उद्देश्य निर्धारित करना अर्थात् दुख का अंत।

4– जीवन को सही रास्ते या सही तरीके से अर्थात ''मार्ग'' से जीतना।

इस तरह अनुयायियों को वैयक्तिक नीति शिक्षा और सामाजिक सद्विवेक के लिए प्रेरणा दी जाती थी। '' जिसमें समझ और महान बुद्धि है वह स्वयं या दूसरे या दोनों को नुकसान पहुंचाने का विचार नहीं कर सकता। बल्कि वह न केवल अपने, दूसरों, दोनो के और समस्त विश्व कल्याण के लिए सोचता है। इस तरह से वह समझ और विशाल बुद्धि का प्रदर्शन करता है''

नैतिकता के तीन प्रमुख आधार –<u>विनाशकारी आचरण से दूर रहना, अनुशासन, दूसरों की सहायता करना</u>।

जब हम बौद्ध धर्म में नैतिकता या नैतिक आचरण की बात करते है तो हमारा आशय व्यवहार के तीन अलग–अलग क्षैत्रों से होता है पहला विषय विनाशकारी व्यवहार से दूर रहने से संबधित है, इसका अर्थ यह है कि चाहे हमारी मंशा किसी को नुकसान पहुंचाने की हो या न हो, हम क्रोध या लालच या स्वार्थ के वशीभूत हो कर आचरण न करें कभी–कभी हम स्वार्थपूर्ण व्यवहार करते है और हमें इसका आभास तक नही होता है कि स्वार्थी हो रहें, जब कि वास्तव में हमारा उद्देश्य किसी को चोट पहुंचाना नही होता है, फिर भी हमारे ऐसे व्यवहार से बड़ा नुकसान हो जाता है और बड़ी परेशानियां खड़ी हो जाती है। इसलिए नैतिकता का पहला आधार यह है कि हम विनाशकारी व्यवहार से बचें।

दूसरे प्रकार का नैतिक आचरण रचनात्मक कार्यो मे सलंग्न होना है। कड़ी मेहनत करके अध्ययन करते हुए अच्छी शिक्षा हासिल करना है। इसके लिए बड़े अनुशासन की आवश्यकता है और यह नीतिशास्त्र का क्षैत्र है।

तीसरे प्रकार की नैतिकता यह है कि हम वास्तव में दूसरों की सहायता करने के कार्यो से जुड़े। हमारे पास जो भी क्षमताएं हो, हम उनका उपयोग दूसरों की सहायता करने के लिए कर सकते है आखिरकार समाज में रहते हुए हमारी खुशी पूरे समाज की खुशियों पर ही तो निर्भर करती है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि जब हम नैतिकता की बात करें। तो हम बड़ा व्यापक दृष्टिकोण अपनाएं, संकीर्णता के छोटे दायरे में न सोचे।

बौद्ध धर्म में हम एक शब्द का प्रयोग करते है जिसका अर्थ होता है कि हम अपनें जीवन की कमान अपने हाथों मे ले, यानी हम अपने जीवन को अपने नियत्रंण में रखें। इसका उल्लेख किसी घोडे के उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। घोडे की दिशा को नियन्त्रित करने के लिए सवार उसकी लगाम को अपने हाथों में रखता है। उसी प्रकार हम कहते है कि हमें अपने चित्तरूपी घोडे की लगाम को अपने हाथों में रखना चाहिए इस घोड़े को निरंकुश नही दौडने देना चाहिए और न ही किसी अन्य को उसे नियंत्रित करने देना चाहिए। इस दृष्टि से अपने जीवन को नियंत्रित करना परमावश्यक है।

नैतिक आचरण के लिए विवेकी सचेतनता –

<u>हानिकारक और उपयोगिता का बोध– आवश्यक है।</u>

इसलिए जब हम बौद्ध धर्म में नैतिकता की बात करते है तो हमारा कहने का आशय यह नही होता है कि :''ये कानून हैं, और ये नियम है, और सिर्फ आज्ञाकारी रहते हुए इनका पालन करना है। यह बौद्ध दृष्टिकोण नही है। अपना जीवन हमे ऐसा नही जीना है जैसे हम

सेना में हो और : ''जी हुजूर'', मै इन नियमों का पालन करूंगा। '' ऐसा नही है। बल्कि बौद्ध धर्म में नैतिकता विवेकी सचेतनता पर आधारित होती है। हमे यह बौद्ध विकसित करने की आवश्यकता है कि क्या उपयोगी है, क्या नुकसानदेह है। और क्योंकि सभी सुख चाहते है, कोई भी दुःख नही चाहता , इसलिए यदि मै दुख से बचना चाहता हूं तो मुझे ऐसी चीजो से दूर रहना होगा जो हानिकारक है, जिनसे मेरा और दूसरों का सुख नष्ट हो सकता है।

स्वकीय मूल्यों का बोधः– मूल्यों का बोध नैतिकता का एक अन्य आधार है। हमें अच्छे, सकारात्मक गुणों और उन गुणों को धारण करने वाले व्यक्तियों का आदर करना चाहिए। बुद्ध के अनुसार–मैं किन मूल्यों को जीवन में सबसे अधिक महत्व देता हूँ? क्या किक मारकर गेंद को नेट में पहुंचाने की योग्यता को? या किसी ऐसी योग्यता को जो सचमुच लोगो के जीवन के लिए उपयोगी हो? किक मार कर गेंद को नेट मे पहुंचाने के हुनर को सीखा जा सकता है। बहुत अच्छी बात है, और इससे भी कई लोगों का मनोरंजन भी होता है, लेकिन किक मारकर गेंद को नेट मे पहुचाने के लिए शायद किसी पशु को प्रशिक्षित किया जा सकता है। इसलिए एक महान खिलाड़ी बनना एक उम्दा लक्ष्य हो सकता है, लेकिन क्या मै स्वयं को इससे बढ़कर ऐसी किसी और बात के लिए भी प्रशिक्षित कर सकता हूं जिसे कोई पशु न कर सकता हो, और क्यों नही, हम तो आखिरकार इंसान है, और हम ऐसा बहुत कुछ कर सकते है, क्योंकि हमारे पास बुद्धि है, भावनांए है, हमारे पास वह सामर्थ्य है कि हम न केवल दूसरों का मनोरंजन कर सकते है, बल्कि अनेकानेक प्रकार से उनकी सहायता भी कर सकते है।

महात्मा बुद्ध के अनुसार नैतिक जीवन ही सुखी जीवन का मार्ग है लेकिन जब हम और अच्छा कार्य करने की बात करते है तो उसका अर्थ यह नही हैं कि हम स्वयं को प्रताड़ित करें– 'मै किसी काम का नही हूँ'' –और अपने बारे में बड़े नकारात्मक ढंग से सोचने लगें , इस सीमा तक

कि नैतिक जीवन का पालन करना एक सजा बन जाए। यह कोई सजा नही है। हमें यह समझना चाहिए कि नैतिकता पर आधारित जीवन व्यतीत करना सुखमय जीवन जीने का मार्ग है और इससे हमे दूसरों को और अधिक सुख प्रदान करने मे मदद मिलती है जिससे स्वयं हमारी खुशी में ही वृद्धि होगी।

इस प्रकार हमारा भविष्य स्वयं हमारे ऊपर ही निर्भर करता है। अतः चाहे अभी हम कोई स्कूली युवा हों, या वयस्क या कोई वृद्ध हो, हम सभी इस मार्ग का पालन कर सकते है।

4.4 बौद्ध का मनोविज्ञान–

4.4.1 परिचय –

जब हम बौद्ध विज्ञान की बात करते हैं, तो हमारा आशय तर्क जैसे विषयों से होता है, हम किसी प्रकार विषयों को समझ पाते हैं, और मूलतः वास्तविकता को कैसे समझ पाते है–ब्रहमांड की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, आदि जैसे विषय–चेतन और जड़ पदार्थ के बीच का संबंध। इन सभी विषयों का संबंध विज्ञान से है, और बौद्ध धर्म इन सभी विषय क्षैत्रों पर बहुत प्रभाव डालता है।

बौद्ध मनोविज्ञान विभिन्न अशांतकारी अवस्थाओं, विशेषतया हमारे लिए ढेरों दुख उत्पन्न करने वाले अशांतकारी मनोभावों (क्रोध, ईर्ष्या, लोभ आदि) के विषय की विवेचना करता है। और बौद्ध धर्म में इन अशांतकारी मनोभावों से उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान करने के लिए विधियों की एक समृद्ध परम्परा है।

वहीं दूसरी ओर, बौद्ध धर्म विभिन्न आनुष्ठानिक पहलुओं, प्रार्थनाओं से सम्बन्ध रखता है, इसमें पुनर्जन्म जैसे विषयों पर चर्चा की जाती है। और यह भी एक बहुत समृद्ध पक्ष है।

इसलिए जब हम यह प्रश्न पूछते है कि ''बौद्ध धर्म क्यों?समकालीन विश्व में हमें बौद्ध धर्म की क्या आवश्यकता है?'' तो विशिष्टतया बौद्ध विज्ञान और बौद्ध मनोविज्ञान के बारे में विचार करने की आवश्यकता है।

4.4.2 बौद्ध विज्ञान –

तर्क –

तर्क बौद्ध अभ्यास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, और इसका अध्ययन वाद–विवाद के माध्यम से किया जाता है। अब इस वाद–विवाद का उद्देश्य क्या है? वाद–विवाद का उद्देश्य अपने विरोधी को परास्त करना नहीं है, विरोधी को गलत सिद्ध करना नहीं है। बल्कि वाद–विवाद का मुख्य मुद्दा यह है कि किसी व्यक्ति ने कोई विचार प्रस्तुत किया है, और वह किसी बौद्ध शिक्षा के बारे में कोई राय या विचार रखता है, और कोई दूसरा व्यक्ति उसकी राय को चुनौती देता है और यह परखने का प्रयत्न करता है कि प्रस्तावक का दृष्टिकोण कितना सुसंगत या तर्कपूर्ण है। इसलिए यदि आप किसी बात को मानते है तो तर्क की दृष्टि से वह निष्कर्ष किसी और बात पर भी लागू होता है। और यदि वह निष्कर्ष बेतुका है, उसका कोई अर्थ नहीं है तो आपकी समझ में कोई दोष है। इसलिए यह बात बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यदि हम नश्वरता जैसे यथार्थ के मूलभूत तत्वों को समझने का प्रयत्न करेंगे तो – जिसे हम ध्यान साधना कहते है– हम उसके बारें में गहराई से चिन्तन करना चाहेंगे और उसे हम विश्व के प्रति अपने दृष्टिकोण का भाग बनाना चाहेंगे।

सब कुछ प्रतिपल बदल रहा है, और हमारी मानसिक शांति की दृष्टि से इस बात को समझना बहुत महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए आप कोई नया कम्प्यूटर खरीदते है और अन्ततोगत्वा वह खराब हो जाता है, तो आप इस बात को लेकर खिन्न हो जाते हैं: ''यह खराब क्यों हुआ?'' आदि। लेकिन यदि आप इस घटना को तर्क की दृष्टि से देखें तो उसके

खराब होने की मूल वजह यह है कि उसे बनाया गया था। चूँकि उस कम्प्यूटर को बहुत से पुर्जो और हिस्सों को मिला कर बनाया गया था जो आपस में जुडे हुए थे, इसके कारण वह बहुत अस्थिर था, और निःसंदेह कभी न कभी उसे खराब होना ही था।

इसी प्रकार जब हम किसी से मिलते हैं और उस व्यक्ति के साथ गहरी दोस्ती बना लेते है या कोई भागीदारी विकसित कर लेते हैं, तो अन्ततोगत्वा वह भी खत्म हो जाती है। यह भागीदारी क्यों खत्म हुई? दोस्ती क्यों टूटी? हमारी दोस्ती इसलिए टूटी क्योंकि हम मिले थे। हमारी मुलाकात के बाद गुजरने वाले हम पल के साथ उस व्यक्ति के और स्वयं मेरे अपने जीवन में भी परिस्थितियाँ और हालात बदलते गए। हमारी शुरूआती दौर की दोस्ती जिन परिस्थितियों पर टिकी थी, वे अब नहीं रहीं, और हमारी दोस्ती तो उन्हीं सब परिस्थितियों पर निर्भर है, इसलिए वह खत्म हो जाती है– बेशक उसे खत्म तो होना ही है, क्योंकि उसे आधार देने वाली परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं।

इसलिए जो अन्तिम घटना हमें सम्बंध–विच्छेद का कारण दिखाई देती है–जैसे कोई झगडा आदि – वह तो मित्रता के भंग होने की परिस्थिति मात्र है। यह घटना न होती तो कुछ और हुआ होता। लेकिन दोस्ती के खत्म होने की असली वजह तो यह है कि दोस्ती की शुरूआत हुई थी।

हमारे जीवन की भी यही स्थिति है (मृत्यु के प्रति बौद्ध धर्म का यही दृष्टिकोण है): हमारी मृत्यु का कारण क्या है? कारण यह है कि हमारा जन्म हुआ है। दरअसल रोग या दुर्घटना तो मृत्यु की परिस्थिति मात्र है। इसलिए यदि किसी का जन्म हुआ है, तो उसकी मृत्यु भी होगी। बस यही वास्तविकता है। ये बौद्ध विज्ञान के पहलू हैं, और यह तर्कसंगत है। इसलिए शास्त्रार्थ में विरोधी आपके ज्ञान को परखेगा और आपके तर्क में त्रृटियाँ ढूँढने का प्रयत्न करेगा।

''आप ऐसा कह सकते हैं, यदि मैंने वह न खाया होता या मैं उस जगह न गया होता ,तो मेरी मृत्यु न हुई होती'' जबकि प्रतिद्वंदी यह कह सकता

है, ''हाँ, लेकिन ऐसा दूसरी परिस्थितियों में भी हो सकता था क्योंकि आपका जन्म हुआ, इसलिए आपकी मृत्यु भी होगी''।

इस प्रकार,तर्क के आधार पर, वाद–विवाद के आधार पर हमें एक निश्चित ज्ञान की प्राप्ति होती है जहॉ कोई दुविधा नहीं होती (''यह बात ऐसे है, या वैसे है?'')। और इस प्रकार हमारा बोध बहुत दृढ़ और स्थित हो जाता है। और उसके बाद चाहे हम ध्यान साधना कर रहे हों या कुछ और, हमारा कार्य बहुत प्रभावी हो जाता है। इस प्रकार की चर्चा, वाद–विवाद , तर्क सभी के लिए हर परिस्थिति में बहुत उपयोगी होते हैं। अक्सर हमारे विचार बहुत अस्पष्ट होते है हम अपने कर्मो के परिणामों या अपनी सोच के परिणामों के बारे में विचार नहीं करते। इसलिए यदि हम तर्कसंगत ढंग से विचार करना सीख लें,तो हमारे जीवन की समस्याऐं बहुत कम हो जाएंगी।तो, यह तो बौद्ध विज्ञान का एक पक्ष हुआ।

वास्तविकता –

जहाँ तक वास्तविकता का सम्बन्ध है, हर चीज हर पल बदल रही है और हर घडी अपने अन्त के नजदीक पहुँच रही है। यही वास्तविकता है। हमारी उम्र के बारे में भी यही बात सच है। आप ऐसा सोच सकते हैं, ''अरे, मैं तो हर दिन बूढा हो रहा हूँ'' और स्वयं को समझा सकते हैं ''चलो, ठीक है,'' लेकिन हममें से कितने लोग हैं जो हर दिन यह सोचते हों कि ''मैं अपनी मृत्यु की ओर बढ रहा हूँ'' यही वास्तविकता है''? लेकिन यदि हमें इस बात का आभास हो कि हम हर दिन अपनी मृत्यु के नजदीक पहुँच रहे हैं और मृत्यु कभी भी आ सकती है, जो कि एक सच्चाई है, तो फिर हम अपना समय व्यर्थ नहीं गवाँएगे। हम काम को कल पर नहीं टालेंगे, बल्कि अपने जीवन को अधिक से अधिक उपयोगी ढंग से जीने का प्रयत्न करेंगे। और सबसे अधिक उपयोगी यही हो सकता है कि हम दूसरों के काम आने का प्रयत्न करें। तो यही वास्तविकता है और इस प्रकार विचार करना बहुत उपयोगी होगा, ''यदि

आज का दिन मेरे लिए अन्तिम दिन होता, तो इस आखिरी दिन को मैं कौन–कौन से काम करना चाहूँगा? मैं इस दिन को सार्थक किस प्रकार बना सकता हूँ?'' क्योंकि हम नहीं जान सकते कि हमारा अन्तिम दिन कब आ जाएगा। इस कमरे से बाहर निकलने पर हम किसी कार से टकरा सकते हैं। इस बात को कहने का मकसद किसी को खिन्न करना नहीं है। इसका मकसद यह समझाना है कि हम अपने समय को और अधिक उपयोगी ढंग से बिताएं।

वास्तविकता को समझने की दृष्टि से हम एक और उदाहरण लें। मान लीजिए कि आप दस लोगों के साथ किसी लिफ्ट में हैं, और लिफ्ट बीच में कहीं अटक जाती है। बिजली गुल हो जाती है और आप इन दस लोगों के साथ दिन भर के लिए लिफ्ट में अटक जाते हैं। ऐसी स्थिति में आप लोग एक दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करेंगे? यदि आप लड़ना–झगड़ना शुरू कर दें तो यह लिफ्ट नरक जैसी लगने लगेगी। वहाँ बने रहने का एक ही तरीका है कि सब एक–दूसरे के साथ सहयोग करें, मित्रवत व्यवहार करें, एक–दूसरे के साथ विनम्रता का व्यवहार करें क्योंकि आप सभी इस लिफ्ट में एक साथ फंसे हुए है, आप सभी एक ही परिस्थिति में अटके हुए हैं। यही व्यवहार तर्क पर आधारित है। यही उचित व्यवहार है, है न? इसी उदाहरण को हम इस पूरे ग्रह पर लागू कर सकते हैः यह पृथ्वी ग्रह एक विशाल लिफ्ट की तरह है, और हम सभी इस ग्रह पर एक साथ अटके हुए हैं। यदि हम आपस में लडाई–झगडा शुरू कर दें, तो सभी के लिए यहां रहना दूभर हो जाएगा। इसलिए यहां जीवित बने रहने का यही तरीका है कि सभी एक दुसरे के प्रति मित्रता और उदारता का भाव रखें, क्योंकि हम सभी यहां एक साथ है और हम सभी एक जैसी स्थिति में हैं। हम एक ही हवा में सांस ले रहें हैं, यहां के समुद्र, पानी, जमीन हम सबके हैं। हम सभी एक ही लिफ्ट में सवार हैं। तो , यह वास्तविकता है, तर्क पर आधारित।

इसके अलावा हमारे मन में अनेक प्रकार की कल्पनाऐं भी होती है। हम अनेक प्रकार के असम्भव तरीकों से अपने, दूसरों के और इस दुनिया के अस्तित्व के बारे में कल्पना कर लेते हैं। यह हमारी कल्पना के चित्र होते है, और हमें लगता है कि सभी चीजों के अस्तित्व का यही आधार है, लेकिन यह कल्पनाऐं वास्तविकता के अनुरूप नहीं होती है। यह तो केवल हमारे मन की कल्पना मात्र होती हैं।

उदाहरण के लिए बौद्ध के शब्दों में–मैं ऐसा सोच सकता हूँ कि मैं किसी विशेष प्रकार का आचरण कर सकता हूँ और उसके कोई प्रभाव नहीं होंगे। जैसे, ''मैं अच्छी शिक्षा हासिल न करू, मैं आलसी बना रहूँ, और फिर भी इसका मेरे जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पडेगा, मैं फिर भी जीवन में सफल हो जाऊँगा।'' या यह कि, ''मैं पहुंचने में देर कर सकता हूँ या मैं आपसे कठोर वचन बोल सकता हूँ, और उसके कोई प्रभाव नहीं होंगे।'' बहुत से लोग ऐसा समझते है कि दूसरों की भावनाऐं नहीं होती है। उन्हें कभी यह खयाल नहीं आता कि उनकी कही बात से दूसरे व्यक्ति को तकलीफ पहुंच सकती है। इसलिए तो, मैं देर से पहुंच सकता हूँ और इससे कोई फर्क नहीं पडता।'' लेकिन यह वास्तविकता नहीं है।यह तो कारण और कार्य के बारे में हमारी कल्पना है। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि सभी की भावनाऐं होती है जैसे कि मेरी है, मैं आपसे कैसे वचन कहता हूँ या आपके साथ कैसा व्यवहार करता हूँ उससे आपकी भावनाऐं वैसे ही प्रभावित होगी जैसे मेरे बारे में कहे गये और आपके वचन और व्यवहार मेरी भावनाओं को प्रभावित करते है। और यही वास्तविकता है, और इस बात को हम जितना अधिक समझ लेते है और ध्यान में रखते है, उतना ही अधिक हम दूसरों का ख्याल रखने लगते है हमें यह खयाल आता है कि हमारे व्यवहर का दूसरों पर क्या असर होगा, और हम आवश्यकतानुसार अपने व्यवहार में बदलाव कर लेते है। या, मैं यह कल्पना कर सकता हूँ कि मेरा अस्तित्व बाकी सभी से स्वतंत्र है यह भी वास्तविकता नहीं है, क्यों? यदि मैं ऐसा मानने लगूँ, तो मैं सोचूँगा,

''हमेशा मेरे मन की मर्जी चलनी चाहिए, फिर जब हमारी मर्जी के मुताबिक काम नहीं होता है, तो हम बहुत खिन्न हो जाते है, बेहद गुस्सा। लेकिन समस्या तो यह है कि बाकि सभी लोग भी समझते है कि वे ही सबसे महत्वपूर्ण है और कोई भी यह मानने के लिए भी तैयार नहीं है कि हम ही सबसे महत्वपूर्ण है। यह तो हमारे मन की कल्पना है। यह तो वास्तविकता नहीं है। कोई भी इस ब्रहमांड का केन्द्र नहीं है। कोई भी ऐसा नहीं है जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण हो। हम सभी इस दृष्टि से बराबर है कि हर कोई चाहता है कि उसे पसन्द किया जाए, कोई भी नापसंद होना नहीं चाहता। रेस्त्रां में भोजन परोसे जाने के लिए प्रतीक्षा करने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसे भोजन परोसा जाए, अकेला में ही ऐसा नहीं हूँ। डॉक्टर के दफ्तर में प्रतीक्षा करने वाला प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसकी बारी आए, अकेला में ही ऐसा नहीं हूँ। तो इसलिए हम सभी बराबर है। यह भी वास्तविकता है।

4.4.3 बौद्ध विज्ञान और पाश्चात्य विज्ञान –

वास्तविकता को समझना और उसके अनुरूप अपने व्यवहार को ढाल लेना बौद्ध विज्ञान का हिस्सा है। हालांकि वास्तविकता सम्बन्धी शिक्षाओं के दूसरे पहलू भी हैं। और यह जानना भी बड़ा दिलचस्प है कि पश्चिम के वैज्ञानिक अब इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि बौद्ध विज्ञान में कही गई बहुत सी बातें सही हैं–विभिन्न विषयों के बारे में ऐसे दृष्टिकोण जिनके बारे में उन्होंने पहले विचार नहीं किया था।

उदाहरण के लिए पश्चिम के विज्ञान में पदार्थ और ऊर्जा के संरक्षण के नियम की बात की जाती हैः पदार्थ और ऊर्जा को न तो सृजित किया जा सकता है और न ही उन्हें नष्ट किया जा सकता है, उन्हें केवल रूपांतरित किया जा सकता है। यदि हम इस दृष्टि से देखें तो इस तर्क के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि न तो कोई आदि है और न ही कोई अन्त। इसलिए यदि हम इस आधार पर महाविस्फोट (बिग बैंग) के बारे में विचार करें, तो हम यही मानेंगे कि महाविस्फोट की उत्पत्ति

शून्य से हुई–उसकी शुरूआत का कोई कारण नहीं था– लेकिन बौद्ध मान्यता यह है महाविस्फोट से पहले भी कुछ था। बौद्ध धर्म को इस ब्रहमाण्ड की उत्पत्ति के कारण के रूप में महाविस्फोट की धारणा को स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन इससे पहले भी असंख्य ब्रहमाण्ड हुए हैं, और इसके बाद भी असंख्य ब्रहमाण्ड होंगे। और अब पाश्चात्य विज्ञान भी धीरे–धीरे इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने लगा है। पाश्चात्य विज्ञान की मूल धारणा की दृष्टि से यह बात तर्कसंगत भी है। इस प्रकार बात फिर तर्क पर आ जाती है। जब आप यह मानते है कि पदार्थ और ऊर्जा को न तो सृजित किया जा सकता है और न नष्ट किया जा सकता है, बल्कि उन्हें केवल रूपांतरित किया जा सकता है, तब तर्क की दृष्टि से यह कहना असंगत होगा कि, ''ब्रहमाण्ड की उत्पत्ति की शुरूआत महाविस्फोट के साथ हुई।'' इस प्रकार पाश्चात्य विज्ञान में हमारी मान्यताओं की दृष्टि से इस बौद्ध तर्क के लागू होने का एक स्पष्ट उदाहरण है।

चित्त और पदार्थ के बीच का सम्बन्ध बौद्ध विज्ञान के प्रमुख अभिकथनों में से एक है। चित्त और पदार्थ के बीच परस्पर सम्बन्ध होता है। आप चित्त को सिर्फ मस्तिष्क या किसी प्रकार की रासायनिक प्रक्रिया के रूप में ही नहीं देख सकते हैं। देखिए, समस्या यह है कि जब आप चित्त शब्द का प्रयोग करते हैं तो आप उसे किसी वस्तु के रूप में समझने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन बौद्ध धर्म की धारणा ऐसी नहीं है। बौद्ध अवधारणा का आशय मानसिक क्रियाकलाप से होता है। और मानसिक क्रिया–जिसका अर्थ स्थितियों या अवस्थाओं को समझना होता है–हम उसे मस्तिष्क की किसी रासायनिक या वैद्युत प्रक्रिया के रूप में समझा सकते हैं, लेकिन हम उसका वर्णन किसी अनुभविक दृष्टिकोण से भी कर सकते हैं, और जब हम चित्त की चर्चा करते हैं तो हमारा आशय इसी अनुभविक दृष्टिकोण से होता है।

अब चिकित्सा वैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि बौद्ध धर्म का यह दावा सही है कि हमारे चित्त की अवस्था, हमारे जीवन के अनुभव की गुणवत्ता हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती है। इसलिए जब हमारा चित्त शान्त होता है, हम आन्तरिक उत्तेजना से मुक्त होते हैं इसका अर्थ है कि हम निरन्तर चिन्ता और शिकायत करने और नकारात्मक, निराशावादी भाव से सोचने से मुक्त हों। यदि हम ऐसे नकारात्मक विचार रखते हैं, तो इसका दृष्प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पडता है और यदि हम आशावादी विचार रखते हैं, सदयता का भाव रखते हैं, दूसरों का ख्याल रखते हैं, मित्रवत व्यवहार करते हैं, शान्त रहते हैं–तो इससे हमारे शरीर की रोगों से लडने की क्षमता सृद्दढ होती है, और हमारे स्वास्थ्य में वृद्धि होती है। इसलिए दुनिया भर में चिकित्सा विज्ञानी अलग–अलग स्थानों पर इस विषय पर शोध कर रहे हैं और वे इस निष्कर्ष पर पहुँच रहे हैं कि बौद्ध धर्म का यह दावा सही है कि हमारे चित्त की अवस्था हमारे शरीर को प्रभावित करती है, इस प्रकार चित्त पदार्थ को प्रभावित करता है। और अब पश्चिम में कई ऐसे कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं जहाँ लोगों को तनाव, पीड़ा और कठिन परिस्थितियों को नियंत्रित करने में सहायता करने के लिए ''चैतन्य भाव'' युक्त ध्यान साधना के आधार पर अभ्यास कराया जाता है। इसमें मूलतः श्वास पर ध्यान को केन्द्रित रखने का अभ्यास किया जाता है जिससे हमें अपने चित्त को शांत रखने में सहायता मिलती है। यह अभ्यास हमें धरातल से एक भौतिक तत्व से जोडे रखता है ताकि हम''मैं, और मेरे दुख और चिन्ताएं'' और ''मैं बहुत परेशान हूँ'' जैसे विचारों के कारण विचलित न हों। तो, यह अभ्यास व्यक्ति के चित्त को शांत करता है और पीडा को नियंत्रित करने में बेहद उपयोगी होता है। इस प्रकार, ऐसे पीड़ाहारी उपायों का लाभ उठाने के लिए बौद्ध धर्म का अनुयायी बनना कतई आवश्यक नहीं है।

4.4.4 बौद्ध मनोविज्ञान –

बौद्ध मनोविज्ञान यह चर्चा करता है कि हम विषयों को कैसे समझते हैं, यानी संज्ञानात्मक विज्ञान (मनोविज्ञान और विज्ञान के बीच का अंतर इतना वास्तविक भी नहीं है)। इस प्रकार हम विषयों को समझने के तरीकों को जानते हैं– हम विषयों को कैसे समझते हैं?–और हम यह भी जानते हैं कि हम भावनात्मक समस्याओं से कैसे निपटते हैं। ये दोनों बौद्ध मनोविज्ञान के क्षैत्र हैं।

विषयों को समझने के तरीके – महत्वपूर्ण बात यह है कि हम यह समझ सकें कि विषयों को समझने के मान्य और अमान्य तरीकों के बीच क्या अन्तर है। बौद्ध धर्म में इस विषय पर बहुत सी जानकारी मिलती है। किसी विषय को समझने के मान्य तरीके के रूप में ऐसे तरीके को परिभाषित किया गया है जो सटीक और निश्चयात्मक हो। सटीक होने का अर्थ है कि वह यथातथ्य हो–वह वास्तविकता के अनुरूप हो, दूसरे लोग उसकी पुष्टि कर सकें। और निश्चयात्मक होने का अर्थ है कि हम दृढतापूर्वक कह सकें, हमें कोई संदेह न हो। यह कोई ऐसी मनोदशा नहीं हैः ''हो सकता है कि ऐसा हो, या वैसा हो, लेकिन मैं निश्चित तौर पर नहीं कर सकता हूँ।''

तो, विषयों को जानने के मान्य तरीके क्या हैं? हमें विषय की आधारभूत समझ हो सकती है। इसमें देखने, सुनने, गंध, स्वाद और किसी प्रकार की शारीरिक संवेदना (और ऐसी संवेदनाओं को हम अपने स्वप्नों में भी अनुभव कर सकते हैं, और तब ये संवेदनाएं मानसिक कहलाएंगी) की अनुभूति शामिल है। इसलिए जब हम किसी व्यक्ति को देखते हैं, तो वह घटना मान्य होनी चाहिए। लेकिन वह अनुभूति हमेशा मान्य नहीं होती हैः ''मुझे लगा कि मैंने आपको भीड़ में देखा था, लेकिन मैं पूरे विश्वास के साथ नहीं कह सकता हूँ। मुझे लगा कि मैंने आपको देखा था, लेकिन दरअसल वह कोई और व्यक्ति था।'' ''मुझे लगा कि आपने ऐसा कहा, लेकिन शायद मैं गलत था और मैंने कुछ और ही सुन लिया।'' यह तो मान्य नहीं है, क्या ऐसा है? यह तो सटीक और निश्चयात्मक नहीं है।

और इस विरूपण के कई कारण हो सकते हैं। जैसे कि जब मैं अपना चश्मा उतारता हूँ तो मुझे अपने सामने सिर्फ धुंधलापन दिखाई देता है। लेकिन आपका अस्तित्व तो किसी धुँधले धब्बे के रूप में नहीं है, क्या ऐसा है? दोष मेरी आँखों का है, और इसीलिए मुझे दृश्य विरूपित दिखाई देता है। यदि मैं किसी दूसरे व्यक्ति से पूछूँ, ''क्या आपको वहाँ सामने धुँधला धब्बा दिखाई देता है?'' तो उस व्यक्ति का जवाब नहीं होगा, इस प्रकार मैं जान सकूँगा कि मेरी अनुभूति गलत थी।

इस प्रकार हमारी अनुभूति आधारभूत स्तर की होती है, और यहाँ हम सटीक, निश्चयात्मक समझ या बोध की बात कर रहे हैं।

और इसके अलावा आनुमानिक बोध भी मान्य है। किन्तु वह अनुमान मान्य होना चाहिए, त्रुटिपूर्ण नहीं अनुमान तर्क। ''जहाँ धुआँ होता है वहाँ आग भी होती है'' यह एक चिरसम्मत उदाहरण है। आप दूर पहाड़ पर किसी चिमनी से उठते हुए धुँए को देखते हैं। यह तो मान्य अनुभूमि हुई–आप धुँए को देखते हैं– और आग के होने का निष्कर्ष निकाल लेते हैं (हालांकि आग हमें प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देती है)। जहाँ धुआँ है, वहाँ आग भी होगी। तो यह अनुमान मान्य है।

लेकिन कुछ ऐसे विषय हैं जिन्हें हम तर्क की सहायता से भी नहीं जान सकते हैं, जैसे किसी घर में रहने वाले व्यक्ति का नाम, इसके लिए आपको जानकारी के किसी मान्य स्त्रोत की आवश्यकता होगी। यह भी एक प्रकार का अनुमान है– यह व्यक्ति जानकारी का एक मान्य स्त्रोत है, इसलिए वह जो कहता हैं वह सत्य है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण यह हैः ''मेरा जन्मदिन कब आता है?'' ऐसा कोई तरीका नहीं है कि हम स्वयं अपने जन्म की तारीख को जान सकें। अपने जन्म की तारीख को जानने का एकमात्र तरीका यही है कि हम अपनी माता से पूछें या अभिलेखों को देखकर मालूम करें, इस प्रकार यह जानकारी का एक मान्य स्त्रोत है।

अनुमान के कई स्वरूप हो सकते हैं। एक अनुमान सुस्थापित परम्पराओं पर आधारित होता हैः आपको कोई ध्वनि सुनाई देती है। आप कैसे मालूम

करते हैं कि वह कोई शब्द है? और आपको यह कैसेमालूम होता है कि उस शब्द का क्या अर्थ है? यदि आप इसके बारे में विचार करें तो यह एक अद्‌भुत प्रक्रिया है। मूलतः हमें सिर्फ आवाजें सुनाई देती हैं, लेकिन चूँकि हम कुछ परम्पराओं को सीख चुके होते हैं, इसलिए जब हमें वह स्वर सुनाई देता है तो हम यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि वह किसी शब्द का स्वर है, और हम यह निष्कर्ष भी निकाल लेते हैं कि उसका एक निश्चित अर्थ है। बेशक हमें इसकी जाँच करनी पड़ती है क्योंकि कभी–कभी हमें ऐसा लगता है कि किसी व्यक्ति की कही बात कोई एक निश्चित अर्थ है जबकि उस व्यक्ति का आशय उससे बिल्कुल अलग होता है।

तो, जब हम बौद्ध मनोविज्ञान के इस पहलू की बात करते हैं तो हमारा आशय संज्ञानात्मक विज्ञान से होता है। हमें इसकी जाँच करनी होती है। ''मेरा यह निष्कर्ष यह है कि आपने जो कहा उसका यह अभिप्राय है, लेकिन क्या मेने सही निष्कर्ष निकाला है या नहीं?'' अक्सर हम दूसरे व्यक्ति की कही हुई बात का गलत अर्थ समझ लेते हैं, क्या ऐसा नहीं होता है? कोई कहता है, ''मुझे तुमसे प्रेम है,''और हो सकता है कि हम उसका अर्थ समझें कि यह हमारे प्रति यौनाकर्षण की अभिव्यक्ति है, जबकि उसका आशय होता ही नहीं है। ऐसे गलत अर्थ निर्धारण से बडी भ्रामक स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

इसलिए यदि अनुमान मान्य है, तो वह सटीक और निश्चयात्मक होगा।

पूर्वधारणा अमान्य होती है। ''मैं पहले ही मान लेता हूँ कि आपकी बात का आशय यह है, लेकिन मैं विश्वासपूर्वक यह नहीं कह सकता।'' पूर्वधारणा मूलतः अटकलबाजी है। ''मेरा अनुमान है कि आपका आशय यह है।'' मेरा अनुमान सही हो सकता है गलत भी हो सकता है, लेकिन वह अनिर्णायक है। ''मेरा विचार है कि आपका कहने का यह अर्थ है।'' यह अटकलबाजी है। लेकिन हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते।

और फिर अनिश्चय के कारण अनिर्णय की स्थिति आती हैः ''क्या आप यह कहना चाहते हैं, या आपके कहने का वह आशय है?'' हम असमंजस में रहते हैं।

और फिर विरूपित बोध की स्थिति उत्पन्न होती है, जहाँ हम एकदम गलत अर्थ ग्रहण करते हैं। यह तो किसी भी दृष्टि से वह अर्थ नहीं है जो उस व्यक्ति का अभिप्राय था।

तो, संज्ञान की प्रक्रिया इस प्रकार चलती है, और बौद्ध धर्म में इसके बारे में बहुत कुछ कहा गया है। हम कैसी भी पृष्ठभूमि से हों, हमारे लिए यह समझना बहुत उपयोगी है, ''इस विषय को समझने का मेरा तरीका सही है या गलत?'' यदि मैं फिर भी निश्चित नहीं हूँ तो मुझे इस बात को समझना होगा और अपने बोध को ठीक करने का प्रयत्न करना चाहिए, पुनः यह मालूम करने का प्रयत्न करना चाहिए कि वास्तविकता क्या है। यह तरीका सभी के लिए उपयोगी है। इसे अपनाने के लिए आपको बौद्ध धर्म और उसके अनुष्ठानों की आवश्यकता नहीं है।

अशांतकारी मनोभाव –

बौद्ध मनोविज्ञान का एक अन्य प्रमुख विषय मनोभावों से सम्बन्धित है। हमारे भीतर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के मनोभाव होते हैं। ये नकारात्मक मनोभाव ही अशांतकारी मनोभाव होते है, हमारे मन की शांति को भंग करने वाले होते हैं। इन्हें ऐसे मनोभावों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिनके उत्पन्न होने पर हमारे चित्त की शांति भंग हो जाती है – हम थोडे विचलित हो जाते हैं, थोडे उत्तेजित हो जाते हैं–और इसके कारण हम अपने ऊपर नियंत्रण खो बैठते हैं। इसलिए जब हम क्रोधित होते हैं, हमारी ऊर्जा – और आप इसे अनुभव कर सकते हैं, असंतुलित हो जाती है। और फिर हम ऐसी बातें कहते और करते हैं जिनके बारे में हमें बाद में पछतावा हो सकता है। हम इस भाव के वशीभूत हो कर व्यवहार करने लगते हैं।

बौद्ध धर्म में कर्म के बारे में भी बहुत चर्चा की जाती है। और कर्म के बारे में चर्चा पुरानी आदत के वशीभूत हमारे व्यवहार पर आधारित होती है। इसलिए जब हम आसक्ति या इच्छा या लोभ के वशीभूत होते हैं तब भी हमारा चित्त शांत नहीं है– हम अशांत होते हैं क्योंकि हम कुछ पाना चाहते हैं और ऐसी स्थिति में भी अपने ऊपर हमारा नियंत्रण नहीं रहता है।

तो, यह तो अशांतकारी मनोभावों की बात हुई। वहीं दूसरी ओर कुछ सकारात्मक मनोभाव भी होते हैं। बौद्ध धर्म यह नहीं कहता है कि आप अपने चित्त के सभी मनोभावों से मुक्त हो जाएं। प्रेम जैसे सकारात्मक मनोभाव भी होते हैं जिसके वशीभूत दूसरे लोग सुख की प्राप्ति और सुख के साधनों की प्राप्ति की इच्छा रखते हैं फिर चाहे उन साधनों का जो भी प्रभाव हो, और करूणा का मनोभाव है, दूसरों के दुख और दुख के कारणों से मुक्त होने की इच्छा रखने का भाव, धैर्य है, सम्मान है। इस प्रकार अनेक सकारात्मक मनोभाव भी हैं। इसलिए हमें यह विवेक होना चाहिए कि हम अपने सकारात्मक और विनाशकारी मनोभावों और व्यवहार के बीच भेद कर सकें और बौद्ध धर्म में इन विभिन्न मनोभावों को समझने की प्रचुर जानकारी मिलती है ताकि हम उन्हें पहचान सकें, और साथ ही साथ हमें ऐसी अनेक विधियों की भी शिक्षा मिलती है जिनकी सहायता से हम इन अशांतकारी मनोभावों से मुक्त हो सकते हैं।

लेकिन हम इस प्रकार विचार करते हैं: ''मैं अपने मस्तिष्क मैं बैठी वह मूर्त सत्ता हूँ, अपने मस्तिष्क में उठ रहे उस स्वर का नियंता जो यह सोच–सोच कर चिंतित रहता है कि मैं क्या करूँ? लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं?'' मानो मेरे अन्दर कोई छोटा सा मैं बैठा हुआ हो जो किसी चित्रपट पर आने वाली सभी सूचनाओं को देख रहा हो और इन्द्रियों से मिलने वाली जानकारी को लाउडस्पीकर पर सुन रहा हो और शरीर को चलाने वाले और वाणी को नियंत्रित करने वाले बटनों को दबाता हो: ''अब मैं ऐसा करूँगा। अब मैं यह कहूँगा'' यह हमारी अपने बारे में एक

अशांतकारी मिथ्या धारणा है। हम कैसे समझ सकते हैं कि यह धारणा अशांतकारी है? क्योंकि हम असुरक्षा से ग्रसित रहते हैं। इस प्रकार विचार करने के कारण हमें अपने बारे में यह असुरक्षा अनुभव होती हैः ''लोग मेरे बारे में क्या राय रखते हैं?''

इस प्रकार हम न केवल अपने बारे में इस तरह की कल्पनाएं करते हैं बल्कि अपने आस–पास की सभी चीजों के बारे में भी ऐसी ही कल्पनाएं कर लेते हैं। हम अपने आस–पास की अलग–अलग चीजों को देखते हैं और फिर उनके अच्छे गुणों के बारे में बढ़ा–चढ़ा कर बखान करते हैं। हम उनमें ऐसे गुणों की भी कल्पना कर लेते हैं जो उनमें होते ही नहीं हैं। ठीक वैसे ही जैसे जब हमें किसी से प्रेम हो जाता है, ''वह व्यक्ति दुनिया का सबसे अच्छा व्यक्ति हैं।'' हम उस व्यक्ति के अवगुणों को पूरी तरह अनदेखा कर देते हैं। ''मैंने उससे सुन्दर और आकर्षक व्यक्ति आज तक नहीं देखा।'' और फिर वह व्यक्ति हमें न मिले तो हम उसकी कामना करने लगते हैं, ''मुझे कैसे भी करके उस व्यक्ति को अपना साथी या मित्र बनाना ही होगा।'' और यदि वह व्यक्ति हमारा मित्र बना जाए, तो फिर उसके प्रति आसक्ति (हम उस व्यक्ति को अपने से दूर नहीं जाने देना चाहते) और तृष्णा (हम अधिक से अधिक समय उस व्यक्ति के साथ रहना चाहते हैं) के भाव उत्पन्न होते हैं।

तो, यह एक अशांतकारी मनःस्थिति है, हमें वास्तविकता को देखना चाहिएः प्रत्येक व्यक्ति में कुछ अच्छाइयाँ होती हैं, और कमजोरियाँ भी होती हैं। हम अक्सर सोचते हैं, और ऐसा सोचना एकदम अवास्तविक है, कि : ''मैं सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति हूँ। इसलिए तुम्हारे जीवन में अकेले मेरा ही महत्व है। तुम्हें अपना पूरा समय मुझे ही समर्पित कर देना चाहिए,'' और हम इस बात को पूरी तरह से भूल जाते हैं कि उस व्यक्ति के जीवन में दूसरे लोग भी हैं, असुरक्षित अनुभव करते हैं।

बौद्ध धर्म में इस बात की बहुत स्पष्ट व्याख्या की गई है कि ऐसा दृष्टिकोण और भाव अशांतकारी और अनुचित क्यों है। क्योंकि हमार चित्त

स्थितियों को हमारे सामने इसी प्रकार उपस्थित करता है, और समस्या यह है कि हम उसे वास्तविकता मान बैठते हैं। तो हम अपनी कल्पना के गुब्बारे को फुलाने के लिए ऐसे तरीकों का प्रयोग करते हैं। हमें ऐसा प्रतीत हो सकता है कि मेरे अलावा और किसी का अस्तित्व ही नहीं है, क्योंकि जब मैं अपनी आँखें बन्द करता हूँ तो मुझे कोई नहीं दिखाई देता, लेकिन चित्त में वह स्वर सुनाई देता रहता है। लेकिन यह तो नादानी है। यह तो वास्तविकता नहीं है। यह स्थिति वास्तविकता से मेल नहीं खाती है। मेरे आँखे मूँद लेने से आपका अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता है। यही बौद्ध मनोविज्ञान का आधार है।

प्रेम और करूणा के भाव विकसित करना –

या हम इसे प्रेम और करूणा की दृष्टि से देख सकते हैं। बौद्ध धर्म में इन गुणों को विकसित करने के लिए अनेक तरीके सिखाए जाते हैं, और कोई भी व्यक्ति इनसे लाभान्वित हो सकता है (और वह भी बौद्ध मत के धार्मिक स्वरूप को अपनाए बिना) सभी की समानता प्रेम और करूणा का आधार हैः सभी जीवन में सुख चाहते हैं, कोई भी दुख नहीं चाहता। सभी आनन्दित रहना पसन्द करते हैं। कोई भी दुखी नहीं रहना चाहता। इस दृष्टि से हम सभी एक जैसे हैं।

हम सभी परस्पर सम्बन्धित हैं। मेरा पूरा जीवन दूसरों की करूणा और उनके श्रम पर निर्भर है। हम उन सभी लोगों के बारे में विचार करते हैं जो हमारे लिए खाने की चीजें उगाते हैं, उनकी ढुलाई करते है। इसके अलावा और भी लोग हैं जिन्होंने सडकों का निर्माण किया है और वे लोग भी हैं जिन्होंने उस भोजन सामग्री को ढोने वाले ट्रकों का निर्माण किया है। और इनके निर्माण के लिए धातु कहाँ से आई होगी? किसी ने उस ट्रक के निर्माण के लिए प्रयुक्त धातु का खनन किया होगा। फिर रबड़ के टायर भी तो हैं। वह रबड़ कहाँ से आया होगा? इस प्रकार इतने सारे लोग उद्योगों से भी जुडे हुए हैं। फिर पेट्रोल का निर्माण हुआ होगा। जब

हम इस नज़रिए से देखते हैं तो हमें यह बात समझ आती है कि हम पूरी तरह दूसरों के साथ जुडे हुए हैं और उन पर निर्भर हैं। और वैश्विक अर्थव्यवस्था की दृष्टि से यह बात और अधिक स्पष्ट हो जाती है।

इस प्रकार जब हम सभी को समान समझते हैं और सभी के बीच की परस्पर निर्भरता के बारे में विचार करते हैं तो हमारा दृष्टिकोण यह होता हैः ''जो भी समस्याएं हैं, उन्हें हल किया जाना चाहिए।'' क्योंकि एक महान बौद्ध आचार्य ने कहा था, ''समस्याओं और दुख पर किसी का स्वामित्व नहीं होता, दुख का निवारण किया जाना चाहिए, इसलिए नहीं कि वह मेरा या आपका दुख है – उसका निवारण तो केवल इसलिए किया जाना चाहिए क्योंकि वह कष्ट देता है। ''इसलिए यदि कोई पर्यावरण सम्बन्धी समस्या उत्पन्न होती है, तो हमें कहना चाहिए कि यह अकेले मेरी या अकेले आपकी समस्या नहीं है, यह हम सभी की समस्या है। समस्या पर किसी का स्वामित्व नहीं है। उसका समाधान केवल इसलिए किया जाना चाहिए क्योंकि वह एक समस्या है, केवल इसलिए कि वह एक समस्या है और सभी को तकलीफ देती है।

इस प्रकार हम प्रेम और करूणा के भाव को विकसित करने के लिए ऐसे तरीके अपनाते है जिनका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं होता है, बल्कि वे पूरी तरह तर्क और वास्तविकता पर आधारित होते हैं।

चित्त और पुर्नजन्म :–

जब हम पुनर्जन्म की चर्चा करते हैं, तो हम चित्त की बात करते हैं। यह विषय आत्मा के विषय से जुड़ा है। हमें यह समझना होगा कि चित्त और आत्मा से हमारा क्या आशय है।

पुनर्जन्म का मतलब सांतत्य से है। जैसे पदार्थ और ऊर्जा का न तो निर्माण किया जा सकता है और न ही उन्हें नष्ट किया जा सकता है, बल्कि उनका केवल रूप बदलता है, उसी प्रकार हमारे वैयक्तिक, आत्मपरक मानसिक कार्यकलाप को न तो सृजित किया जा सकता है

और न ही उसे नष्ट किया जा सकता है। ऐसा मानना तर्कविरूद्ध होगा कि वह शून्य से शुरू हो सकता है। और जब इस सातत्य में हर क्षण अगले क्षण को उत्पन्न करता है, तो यह मानना भी तर्कविरूद्ध होगा कि वह समाप्त हो जाए या शून्य में परिणत हो जाए। बेशक मानसिक कार्यकलाप के लिए थोडा भौतिक समर्थन होता है, लेकिन वह बहुत ही सूक्ष्म ऊर्जा के रूप में होता है, इसके लिए किसी मस्तिष्क युक्त स्थूल शरीर का होना आवश्यक नहीं है। यह तो एक जन्म से अगले जन्म में और फिर उससे अगले जन्म में, यहाँ तक कि बुद्धत्व में भी चलता जाता है, वैयक्तिक, आत्मपरक मानसिक कार्यकलाप के रूप में, इसका स्वरूप बहुत सूक्ष्म या फिर बिल्कुल स्थूल हो सकता है, उसके कई स्तर हो सकते हैं, लेकिन वह क्षण प्रति क्षण अनवरत जारी रहता है।

रही बात आत्मा की, तो निश्चित तौर पर यह एक पाश्चात्य शब्द है। और अलग–अलग भाषाओं में – पश्चिम जगत की भाषाओं में भी– चित्त के लिए, जीव के लिए, आत्मा के लिए शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ये शब्द एक दूसरे के सदृश नहीं हैं, हमारे पाश्चात्य जगत की भाषाओं में भी सदृश नहीं है, और अलग–अलग धर्म आत्मा को विविध भाषाओं में अलग–अलग ढंग से परिभाषित करते हैं। और फिर पश्चिम के धर्मो में आत्मा और ईश्वर के बीच के सम्बन्ध की भी बात की जाती है। और भारतीय धर्मो में आत्मन् शब्द का प्रयोग किया जाता है, और यहाँ भी आत्मन् का प्रयोग विभिन्न अर्थो में किया जाता है। इसलिए आत्मा शब्द का सामान्यीकृत अर्थ निर्धारित कर पाना कठिन है।

किन्तु मैं के बारे में चर्चा करना अपेक्षाकृत अधिक आसान है– मैं की संकल्पना नहीं, बल्कि मैं क्या है? हम सभी का मैं या आत्म होता है, लेकिन हम उसके अस्तित्व पर कल्पना के ऐसे आवरण चढ़ा देते हैं कि उसका स्वरूप वास्तविकता से मेल नहीं खाता है। आप अपनी शैशव–अवस्था के किसी चित्र को देखते हैं, और कहते हैं, ''यह मैं हूँ।'' तो फिर यह मैं क्या है? मैं एक शब्द है जिसे हमारे जीवन की इन सभी

बदलती घटनाओं पर चस्पां कर दिया जाता है। और मैं इनमें से कोई चित्र नहीं है, बल्कि मैं शब्द का आशय मेरे जीवन की इन सभी घटनाओं पर आधारित किसी चीज से होता है, जो पल प्रति पल परिवर्तनशील है।

बुद्ध ने पालि भाषा में इसके लिए अनत शब्द का और संस्कृत भाषा में अनात्मन शब्द का प्रयोग किया था, जो भारतीय दर्शन के दूसरे निकायों द्वारा प्रयुक्त '' जो आत्मन नहीं है'' है। भारतीय दर्शन के दूसरे निकाय आत्मन् को इस रूप में व्यक्त करते है। जहाँ वह स्थिर है (वह कभी बदलता नहीं है और किसी बात से प्रभावित नहीं होता है), अभाज्य है (अर्थात वह या तो ब्रहमाण्ड के आकार का है, आत्मन् ही ब्रहम है, पूरा ब्रहमाण्ड है, या फिर आत्मन् जीवन के किसी सूक्ष्म स्फुलिंग के समान है), और पूर्णतः मुक्त रूप में शरीर या चित्त से अलग होकर अस्तित्वमान रह सकता है।

कुछ भारतीय दर्शनों की मान्यता है कि इस प्रकार का आत्मन् चेतनायुक्त होता है। यह सांख्य मत है। न्याय दर्शन कहता है कि वह सचेतन नहीं है। जो दर्शन यह मानता है कि वह सचेतन है, यह कहता है कि आत्मन् केवल शरीर में वास करता है और मस्तिष्क का संचालन करता है। और आत्मन् को चेतनाविहीन मानने वाला दर्शन कहता है कि वह शरीर में प्रवेश करता है और चेतना की अनुभूति शरीर के भौतिक आधार पर होती है।

जब बुद्ध ने ''कोई आत्मन् नहीं'' कहा तो वे इन्हीं मतों का खण्डन कर रहे थे। अनात्मन से उनका आशय आत्मन के उस स्वरूप से था जिसे इन दूसरे मतों द्वारा परिभाषित किया गया है। किन्तु आत्मन् होता है, आत्म होता है, लेकिन उसके अस्तित्व का स्वरूप – जिसे ''पारम्परिक आत्म'' कहा जाता है, ''पारम्परिक आत्मन्'' कहा जाता है– से भिन्न है।

बौद्ध धर्म –

जब हम यह प्रश्न पूछते हैं, ''बौद्ध धर्म ही क्यों?'' तो उसके वैज्ञानिक पहलू, और मनोवैज्ञानिक पहलू ही ऐसे पहलू हैं जो जगत में बौद्ध धर्म को

हमारे लिए प्रासंगिक बनाते है। और हममें से कुछ लोगों के लिए बौद्ध धर्म के धार्मिक पहलू– उसके कर्मकाण्ड, पुनर्जन्म सम्बंधी शिक्षाएं, प्रार्थनाएं आदि – उपयोगी हो सकते हैं। लेकिन जैसाकि मैंने कहा, हमारे लिए यह देखना बहुत महत्वपूर्ण है कि हमारे इस आकर्षण का कारण क्या है। क्या हम केवल उसके स्वरूप से आकर्षित होते हैं? क्या हम किसी प्रकार के चमत्कारों की आशा रखते हैं? क्या हम अपने माता–पिता या अपनी परम्पराओं के खिलाफ विद्रोह की भावना से प्रेरित हो कर आकर्षित होते हैं? क्या हम इसलिए आकर्षित होते हैं क्योंकि ऐसा करना इस समय चलन में है, बौद्ध धर्म से जुडना कथित तौर पर ''अनुकूल'' समझा जाता है? ये सभी मान्य कारण नहीं हैं, क्योंकि ये टिकाऊ कारण नहीं है, स्थिर नहीं हैं। यदि हम आकर्षित होते हैं और हमें लगता है कि बौद्ध धर्म हमारे लिए लाभदायक है (इससे मुझे और अधिक उदार, अधिक करूणावा होने में सहायता मिलती है) और यह वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को सृदृढ़ करता है– और यह बहुत महत्वपूर्ण है, कि वह विज्ञान और मनोविज्ञान को सुदृढ करे और उनकी जगह न ले ले – यदि धार्मिक पहलुओं में ये गुण हों, तो अच्छी बात है।

बौद्ध धर्म की मान्यता है कि पुनर्जन्म अनादि है– उसकी कोई शुरूआत नहीं है – इसका अर्थ यह हुआ कि हमारा स्वभाव और वृत्तियाँ अनन्त जन्म कालों से चली आ रही हैं। इस प्रकार अनेक कारकों के प्रभाव से किसी एक जन्म में केवल कुछ वृत्तियाँ ही प्रकट होती हैं। ऐसा कदापि नहीं है कि भले ही हमारा पूनर्जन्म मनुष्य के रूप में ही क्यों न हो, जो कभी–कभार ही होता है, फिर भी हमारी सभी वृत्तियाँ और हमारा समस्त बोध हमारे अगले जन्म में प्रकट होगा। यह बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि आसन्न मृत्यु के समय हमारे क्या विचार थे और हमारी मनोदशा क्या थी। इसके अलावा हमारे अगले जन्म की स्थितियाँ और परिस्थितियाँ, जो सिर्फ हमारी पारिवारिक स्थितियों तक ही सीमित नहीं होती है, देश में अकाल की स्थिति हो सकती है, युद्ध की स्थिति हो

सकती है– कितने ही ऐसे कारक हो सकते हैं जो यह तय कर सकते हैं कि क्या कुछ प्रकट होगा और क्या प्रकट नहीं होगा।
इसलिए यह महत्वपूर्ण है कि हम अपने जीवन में नकारात्मक विचारों और व्यवहार के बजाए सकारात्मक विचारों पर ध्यान केन्द्रित करें, ताकि हम अपनी आध्यात्मिक यात्रा को जारी रखने के लिए हम शांत चित्त और सकारात्मक मनोदशा और ध्येय के साथ मृत्यु को प्राप्त हों।

''बौद्ध सिद्धान्त में मन आरंभ बिंदु होता है, केन्द्रीय बिंदु होता है और एक साधु के स्वतंत्र एंव शुद्ध मन के समान चरम बिंदु भी होता है।''

अधिगम सिद्धान्त में व्यक्तित्व का तुल्य शब्द 'अठ्टा' या 'आत्मन्' होता है। आत्मन् स्थायी नहीं होता है। सचमुच में यह अवैयक्तिक प्रक्रियाओं का योग होता है। इन्ही प्रक्रियाओं के सम्मिश्रण से व्यक्ति परिलक्षित होता है। सचमुच में 'आत्मन्' शरीर अंगो, विचारों संवेदनाओं, इच्छाओं स्मृतियों आदि का कुछ योग होता है। मन में इकलौता सतत् निरन्तरता प्रदान करने वाली शक्ति 'भाव' होता है। हमारे अभिज्ञा के प्रत्येक आनुक्रमिक क्षण बीते हुए क्षण द्वारा निर्धारित होता है और इसके द्वारा फिर आने वाला क्षण का निर्धारण होता है। 'भाव' चेतन के वर्तमान क्षण तथा आने वाले क्षण के बीच संबंध जोडता है। व्यक्ति 'आत्मन्' की पहचान उसके विचारों, स्मृतियों या प्रत्यक्षण द्वारा करता है हालांकि यह सभी क्रियाऐं उस सतत् प्रवाह के ही भाग होते है। अभिधम्म यह स्वीकार करता है कि मानव व्यक्तित्व एक नदी की भांति होता है जिसका एक सत्त रूप होता है, जिसकी एक विशिष्ट पहचान होती है। इस नदी के प्रवाह की प्रत्येक बूँद क्षण–क्षण परिवर्तित होते रहता है। शायद यही कारण है कि कोई भी वर्तमान क्षण पहले बीते क्षण से भिन्न होता है।

बौद्ध–मत में व्यक्तित्व के अध्ययन का संबद्ध अचेतन या अहम् जैसे संप्रत्ययों से न होकर घटनाओं के क्रम से होता है। सबसे मौलिक घटना मानसिक अवस्था तथा संवेदी वस्तु के बीच का संबंध होता है जैसे– एक सुदंर नारी (संवेदी वस्तु) को रखकर विशेष इच्छा का भाव (मानसिक अवस्था) का उत्पन्न होना एक घटना का उदाहरण है।

व्यक्ति की मानसिक अवस्थाएं एक क्षण से दूसरे क्षण सत्त परिवर्तित होती रहती है और इस तरह के सतत् परिवर्तित होने वाले मानसिक अवस्थाओं का अध्ययन करने के लिए अंतर्निरीक्षण विधि का उपयोग किया जाता है जिसमें व्यक्ति स्वंय इन मानसिक अवस्थाओं का एक क्रमबद्ध प्रेक्षण करता है।

अभिधम्म में न केवल मानसिक अवस्थाओं को ही एक क्षण से दूसरे क्षण परिवर्तित होते कहा गया है बल्कि संवेदी वस्तुओं को भी एक क्षण से दूसरे क्षण परिवर्तित होते कहा गया है। जैसे – एक व्यक्ति जब किसी वस्तु पर (जैसे टेबल पर रखे पुस्तक) पर ध्यान देता है तो उसके चेतन में न केवल वह किताब ही बल्कि इर्द–गिर्द के अन्य वस्तुओं जैसे–अन्य पुस्तक, टेबुल लैम्प आदि पर भी ध्यान चला जाता है। इसके अतिरिक्त इन संवेदी वस्तुओं के साथ विभिन्न प्रकार के चिंतन एवं स्मृतियां भी मिल जाती है।

अभिधम्म में पांच सामान्य इंद्रिय के अतिरिक्त एक छठा इंद्रिया भी होता है जिसे 'चिन्तन' कहा गया है। जिस तरह से आवाज या दृश्य मानसिक अवस्था का वस्तु हो सकता है, ठीक उसी तरह से 'चिंतन' भी मानसिक अवस्था का एक वस्तु हो सकता है। प्रत्येक मानसिक अवस्था में विशेषताओं का गुच्छा या समुच्चय पाया जाता है जिसे मानसिक कारक कहा जाता है। मानसिक कारकों की कुंजी कर्म होता है जिसे पालि भाषा में काम कहा जाता है।

अभिधम्म में 'काम' एक तकनीकी पद है क्योंकि प्रत्येक काम मानसिक अवस्था से प्रभावित होता है। अभिधम्म सिद्धान्त में सभी मानसिक कारकों को दो भागों में बांटा गया है। कुशल कारक तथा अकुशल कारक/कुशल कारक में उन प्रत्यक्षणात्मक, संज्ञानात्मक तथा भावात्मक मानसिक कारकों को रखा गया है जो शुद्ध, स्वस्थ एवं हितकर होते है। उसी तरह सें अकुशल कारक में उन प्रत्यक्षणात्मक, संज्ञानात्मक एवं भावात्मक मानसिक कारकों को रखा गया है जो अशुद्ध अस्वस्थकर एंव अहितकर होते है। कोई भी कारक को 'कुशल' या 'अकुशल' की श्रेणी में रखने का निर्णय इस कसौटी पर किया जाता है किवह अमुक कारक मनन के दौरान ध्यान एकाग्रचित करने में मदद करता है या बाधा पहुंचाता है।यदि वह मदद करता है, तो उसे कुशल कारक और यदि वह बाधा पहुंचाता है तो उसे अकुशल कारक की श्रेणी में रखते है।

इन कुशल या अकुशल कारकों के अलावा प्रत्येक मानसिक अवस्था में सात तटस्थ कारक भी पाये जाते है जो निम्नांकित है–

1. **संप्रत्यक्षण –** इसे पालि भाषा में फॉस्सा कहा जाता है । इसमें व्यक्ति को वस्तु का मात्र ज्ञान होता है।
2. **प्रत्यक्षण –** इसे पालि भाषा में सान्ना कहा जाता है कि जिसमें वस्तु की प्रथम जानकारी यह होती है कि वह वस्तु किस इन्द्रिय से संबद्ध है।
3. **संकल्प शक्ति –** इसे पालि भाषा में 'केटाना' कहा जाता है जिसमें वस्तु के पहला प्रत्यक्षण के प्रति एक अनुबंधित प्रक्रिया होता है।
4. **भाव –** इसे पालि भाषा में वेदना कहा गया है। वस्तु द्वारा उत्पन्न संवेदन को भाव कहा जाता है।
5. **एक केन्द्रीयता –**इसे पालि भाषा में एकाग्गता कहा जाता है जिसमें व्यक्ति किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रीत करता है।

6. **स्वतःध्यान**–इसे पालि भाषा में मनसिकारा कहा जाता है जिसमें वस्तु के आकर्षण के कारण व्यक्ति का ध्यान अनैच्छिक रूप से उसके तरफ चला जाता है।

7. **मानसिक ऊर्जा** –इसे पालि भाषा में जीभितीन्द्रीय कहा जाता है जिसके कारण उपर्युक्त छः कारक आपस में संगठित होते है तथा उन्हें यह ओजश्विता प्रदान करता है।

ये सभी सात कारक चेतना को एक मौलिक ढांचा प्रदान करता है।

व्यक्तित्व प्रकार –अभिधम्म सिद्धान्त में व्यक्ति का आधार मानसिक कारकों की विभिन्न शक्तियां होती है। अगर व्यक्ति का मन आदतन किसी विशेष मानसिक कारक या मानसिक कारकों का सेट से प्रबलित होता है, तो उससे व्यक्ति का व्यक्तित्व अभिप्रेरण तथा व्यवहार प्रभावित होता है। व्यक्तित्व का सबसे सामान्य प्रकार वह होता है जिसमें व्यामोह की प्रबलता कम होती हैः जिसमें विमुखता की प्रबलता होती है वह घृणित व्यक्ति होता है तथा जिस व्यक्ति में लालच की प्रबलता अधिक होती है, वह कामुक प्रकार का व्यक्ति होता है। जिस व्यक्ति में सूझ एंव सतर्कता की प्रबलता होती है, वह बुद्धिमान व्यक्ति का व्यक्ति होता है।

व्यक्ति अपनी विशेष मानसिक दशा या अवस्था के कारण ही कोई एक विशेष कार्य करना चाहता है तथा कोई अन्य विशेष कार्य का परित्याग करता है। सचमुच में उसकी मानसिक अवस्था में ही प्रत्येंक कार्य का निर्देशन करता है। जैसे – यदि व्यक्ति का मन लालच से प्रबलित होता है, तो यह उसके लिए एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरण हो जाएगा और वह उसी के अनुरूप व्यवहार भी करेगा और वह अपने लालच से संबद्ध वस्तुओं को पाने का भरसक प्रयास भी करेगा। उसी तरह से यदि उसकी मानसिक अवस्था में अहभाव की प्रबलता होती है, तो व्यक्ति सिर्फ अपनी अहम् को प्रफुल्लित करने वाला कार्य करेगा। इन सभीं का अर्थ तब यह भी

निकलता है कि प्रत्येंक व्यक्ति प्रकार एक अभिप्रेरणात्मक प्रकार भी होता है।

अभिधम्म सिद्धान्त के अनुसार जब व्यक्ति निवार्ण की अवस्था में पहुंच जाता है तो उसकी मानसिक अवस्था में आमूल एवं स्थायी परिवर्तन हो जाता है जिसे एक स्वस्थ व्यक्तित्व के लिए सर्वोतम मार्ग कहा गया है। निवार्ण की प्राप्ति के बाद व्यक्तित्व में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ जाता है जहां व्यक्ति में मन में अकुशल कारकों का होना पूर्णतः बंद हो जाता है। इतना ही नही, व्यक्ति में सभी तरह के 'अनुसया' अर्थात् वे सारी प्रवृतिया जिनसे अकुशल कारकों का जन्म हो सकता है, पूर्णतः समाप्त हो जाती है।

चेतना में यह परिवर्तन भयानक न होकर क्रमिक होता है। जैसे–जैसे मननकर्ता की सूझ मजबूत होते जाती है, उसमें 'निवार्ण' की गहराई बढ़ती जाती है तथा अकुशल कारक पूर्णतः समाप्त हो जाते है। अन्त में ऐसी अवस्था आ जाती है जहां व्यक्ति के मन में कोई भी अस्वस्थकर कारक की उत्पति नहीं होती है। इस अवस्था को 'अराहत' कहा जाता है

अराहत' का शाब्दिक अर्थ है जो प्रशंसनीय हो। इस अर्थ में तब अराहत से अर्थ एक ऐसे व्यक्तित्व से होता है जिसकी सम्पूर्ण प्रशंसा हो सके।

पंचम अध्याय

5.1 –बौद्ध शिक्षा के उद्देश्य

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में मूलभूत परिवर्तन हुए। पाठ्यक्रम में दर्शन, साहित्य, आयुर्वेद जैसे लौकिक विषयों को स्थान दिया गया। लौकिक उन्नति को भी आध्यात्मिक विकास का अंग माना गया। इस प्रकार बौद्ध दर्शन ने शिक्षा के नवीन तथा व्यावहारिक उद्धेश्य निर्धारित किये। शिक्षार्थी के लिए यह उपयोग अत्यन्त उपयोगी थे, आज भी शिक्षा के वर्तमान उद्धेश्य से प्रेरित है। शोधार्थी संक्षेप में शिक्षा के निम्न उद्धेश्यों को प्रस्तुत करती है–

1. **चरित्र निर्माण :–**

बौद्ध शिक्षा में चरित्र निर्माण प्रमुख उद्धेश्य माना जाता था। आचार्य का मुख्य कार्य था, नैतिक नियमों की स्थापना करके शिक्षार्थी का चरित्र निर्माण करना। चरित्र निर्माण करने के लिए आवश्यक नियमों का निर्धारण किया गया है। आचार्य अपने शिक्षार्थियों के लिए यह सुनिश्चित करता था कि कौन सी आदतें ग्राह्य हैं और कौन सी आदतें त्याजय! किस कार्य में शिक्षार्थी कों तत्परता दिखानी चाहिए तथा किस कार्य की उपेक्षा। शिक्षार्थी के दैनिक जीवन के क्रियाकलाप भी आचार्य द्वारा निर्धारित किये जाते थे कि शिक्षार्थी को कब सोना है? कब जागना है? कब कैसे और क्या भोजन करना लाभदायक है या हानिकारक। शिक्षार्थी को मैत्री किससे करनी चाहिए तथा किन स्थानों पर भ्रमण करना चाहिए।मठों, विहारों तथा शिक्षा केन्द्रो का वातावरण छात्रों के चरित्र निर्माण में सहायक सिद्ध होता

था। मिलिन्दपन्हों ने आचार्य को शिष्य के 'मानस पिता' की संज्ञा दी जिसका चरित्रनिर्माण करना उसका नैतिक कर्तव्य था। एक चरित्रवान शिक्षार्थी ही देश एवं समाज का भविष्य था।

2. व्यक्तित्व विकास :–

बौद्ध शिक्षा में शिक्षा का द्वितीय मुख्य उद्धेश्य शिक्षार्थी का व्यक्तित्व विकास करना था। आत्म–विश्वास, आत्मसम्मान, आत्म–संयम तथा आत्म निर्भरता का विकास ही व्यक्तित्व विकास कहलाता था। भविष्य की अनिश्चितता से आत्म–विश्वास में कमजोरी आती है परन्तु तत्कालीन बौद्ध शिक्षा में पाठ्यक्रम व्यवसायपरक था अतएव छात्रों भविष्य की अनिश्चितता नहीं थी। इस कारण छात्रों का भविष्य उज्जवल था। इससे शिक्षार्थी का आत्म सम्मान तथा आत्म निर्भरता में वृद्धि होती थी। आत्म संयम भी शिक्षार्थी के व्यक्तित्व विकास में सहायक था। मठों, विहारों एवं विश्वविद्यालयों में सादगी पर पूर्णतया बल दिया जाता था। शिक्षार्थियों को साधारण वस्त्रों का प्रयोग करना होता हैं तथा सात्विक भोजन दिया जाता था। मर्यादित भोजन मनोंरजन की प्रधानता थी। कह सकते है कि बौद्ध शिक्षा 'सादा जीवन उच्च विचार' के सिद्धान्त पर आधारित थी। इस प्रकार की शिक्षा दीक्षा से छात्र का व्यक्तित्व विकास उज्जवलतम होता था तथा समाज में उसकी 'पूर्णव्यक्ति' के रूप में मान्यता थी।

3. संस्कृति–संरक्षण–

सांस्कृतिक परम्पराओं और संस्कृति का सरंक्षण बौद्ध शिक्षा प्रणाली का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्धेश्य था। बौद्ध शिक्षा ने भगवान बुद्ध के उपदेश एवं सांस्कृतिक धरोहर को अपने दर्शन में, अपनी शिक्षा में सर्वाधिक महत्व दिया। अध्ययन को सर्वाधिक महत्व दिया गया।भिक्षुगण स्वयं अध्ययन करते थे तथा जीवन में उसका परिपालन करते थे तथा दूसरे को भी अपने ज्ञान रूपी धारा से शिक्षित एवं दीक्षित करते थे। यदि कोई समाज

एवं राष्ट्र अपनी संस्कृति का संरक्षण एवं संवर्द्धन नहीं कर सकता तो उसे शिक्षित कहलाने का कोई अधिकार नहीं है। शिक्षा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परम्पराओं की वृद्धि का प्रमुख साधन है। यदि शिक्षा उदीयमान संतति को उत्तम प्राचीन परम्पराओं को स्वीकार कर तदनुरूप आचरण करना नहीं सिखाती तो अपने उद्धेंश्यों में पूर्णतय निष्फल है। अतएव बौद्ध शिक्षा ने संस्कृति और परम्परा को अपनी शिक्षा–दीक्षा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया।

4. धार्मिकता का विकास –

शिक्षार्थी कें मानस में धार्मिकता को उदयित करना बौद्ध शिक्षा का प्रमुख उद्धेश्य माना गया हैं भगवान बुद्ध का आदेश था कि प्रत्येंक भिक्षु–भिक्षणियां उपासक को विनय एंव धम्म की सम्यक शिक्षा दी जाए। बौद्ध शिक्षा पबज्जा के समय शिक्षार्थी को '**धम्मं शरणं गच्छामि' की** प्रतिज्ञा करना अनिवार्य था।

धार्मिक उत्सव, धार्मिक सभाओं को आयोजन, वाद–विवाद, तथा नित्य संध्या–पूजन से शिक्षार्थियों में धार्मिकता का जागरण हो जाता था। धार्मिक जागरण से छात्र लौकिक तथा पारलौकिक जीवन की वास्तविकता को जान जाते थे। भिक्षु तथा पुरोहित ही प्राय आचार्य होते थे। इसी कारण शिक्षार्थी के मन–मस्तिष्क में धार्मिकता का उदय स्वतः ही हो जाता है। धार्मिकता के विकास से शिक्षार्थी का चतुर्दिक विकास होता है। इसी कारण बौद्ध शिक्षा में शिक्षार्थी का धार्मिक विकास करना परमोद्धेश्य माना गया है।

5. सर्वांगीण–विकास

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, उसके समस्त क्रिया कलाप समाज के आधार पर होता हैं, तथा सामाजिक गतिविधियों एवं परिस्थितियों से संचालित होते है। अतः बौद्ध शिक्षा में वैयक्तिक उन्नति के साथ–साथ सामाजिक कुशलता का भी ध्यान रखा जाता था। मठों, विहारों तथा

विश्वविद्यालयों में शिक्षार्थी को उनके सामाजिक कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का बौद्ध कराया जाता था। दीक्षान्त भाषण में सामाजिक कर्तव्यों के पालन पर विशेष रूप से बल दिया जाता था। बौद्ध शिक्षा में मानसिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा का समन्वित रूप है, अतः बौद्ध शिक्षा में मनुष्य के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के समन्वित विकास को शिक्षा का प्रमुख उद्धेश्य माना गया।

5.2 शिक्षा का पाठ्यक्रम–

बौद्ध धर्म में दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदा को प्रमुखता दी गई है। बौद्ध धर्म का आधार संसार से दुख को निरोध करना है, मनुष्य को जरा–मरण के बंधन से मुक्ति दिलाना था। भगवान बुद्ध ने कहा था कि संसार दुख से परिपूर्ण है। संसार का परित्याग करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होगी। इसलिए बौद्ध शिक्षा में निर्वाण आधारित शिक्षा का जन्म हुआ। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में भिक्षु'–भिक्षुणियों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया, परन्तु जब बौद्ध धर्म में जन साधारण को शिक्षा–दीक्षा दी जाने लगी तो इनकी शिक्षा प्रणाली प्रारम्भिक, वैदिक शिक्षा प्रणाली की भांति हो गयी। दोनो पद्धतियों का आदर्श एवं शिक्षा–दीक्षा के तरीके समान हो गए। बौद्ध धर्म में प्रत्येक उपासक को अनिवार्यतः विनय तथा धर्म की शिक्षा प्रदान की जाती थी। बौद्ध विहारों एवं मठों ने शिक्षा का कार्य अपने हाथ में ले लिया और उसका विकास किया। बौद्ध संघ में प्रविष्ट प्राप्ति हेतु दो संस्कार आवश्यक थे–

1. **पबज्जा संस्कार**
2. **उपसम्पदा संस्कार**

पबज्जा संस्कार से उपासकत्व का आरम्भ होता है। हिन्दू धर्म के उपनयन संस्कार की भांति पबज्जा संस्कार के साथ व्यक्ति का आध्यात्मिक जन्म माना जाता है।पबज्जा संस्कार के लिए उम्र निश्चित की गयी थी परन्तु

कालान्तर में यह घटती–बढ़ती रही। बुद्ध ने 5 वर्ष की अवस्था से ही शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ कर दिया था।सामान्यतः पबज्जा संस्कार हेतु आयु 7 वर्ष प्रचलित थी। पबज्जा संस्कार हेतु संरक्षक की आज्ञा परमावश्यक थी। पबज्जा संस्कार के बाद शिक्षार्थी उपासक के नाम से जाना जाता है। उपासक काल के अन्त में उपसम्पदा संस्कार होता है। उपसम्पदा के समय उपासक की उम्र 20 वर्ष से कम नहीं होना चाहिए। ऋणी, तथा अशक्त रोगी को दीक्षा देने पर रोक थी।

बौद्ध धर्म में प्रवेश हेतु वर्ग का कोई बंधन नहीं था, कोई भी मनुष्य बुद्व संघ तथा धम्म में विश्वास प्रकट कर बौद्ध संघ में प्रवेश कर सकता था तथा किसी विद्वान भिक्षु के आचार्यत्व को स्वीकार कर संघ के नियमों का पालन करता था। बौद्धकालीन शिक्षा को निम्नलिखित भागों में विभक्त कर शोधार्थी पाठ्यक्रम पर प्रकाश डाल रही है।

1. प्रारम्भिक शिक्षा–

बौद्ध काल में प्रारम्भिक शिक्षा के पर्याप्त प्रमाण का अभाव है। चीनी यात्रियों ने प्रारम्भिक शिक्षा का कोई उल्लेख नही किया है। वस्तुतः समकालीन समाज में शिक्षा–दीक्षा के क्षैत्र में पतन हो गया था। बौद्ध धर्म ने शिक्षा–दीक्षा पर विशेष ध्यान दिया। महायान के उदय के साथ–साथ बौद्ध विहार, मठों एवं विश्वविद्यालयों ने साधारण जनता को भी शिक्षित करने का कार्य प्रारम्भ कर दिया।

चीनी यात्रियों ने प्रारम्भिक शिक्षा का वर्णन नहीं किया, इसका कारण सम्भवतः उनका इसमें रूचि न लेना प्रतीत होता है, क्योंकि उच्च शिक्षा का प्रादुर्भाव प्रारम्भिक शिक्षा से ही होता है।चीनी यात्रियों ने उच्च शिक्षा का उत्कृष्ट वर्णन किया था तथा विदेशियों का उच्च शिक्षा की प्राप्ति के लिए भारत आगमन के बारे में वर्णन किया था स्वयं कुछ चीनी यात्रियों ने बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में शिक्षा प्राप्त की थी। इत्सिंग ने जल, भोजन, आदि से भृत्यों की भांति आचार्यो की सेवा करने वाले शिक्षार्थियों का वर्णन किया है। संभवतः ये प्रारम्भिक शिक्षा के साधारण विद्यार्थी ही थे।

अतः हम कह सकते है कि प्रारम्भिक शिक्षा बौद्ध विहारों में जहां उच्च शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी, भिक्षुओं द्वारा ही प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करते है। पबज्जा संस्कार के पश्चात् प्रारम्भिक शिक्षा प्रारम्भ होती थी, इसमें लकड़ी के तख्ती पर लिखने का अभ्यास कराया जाता था।अजंता गुफाओं में बालको को शिक्षा प्रदान करते हुए आचार्य को प्रदर्शित किया गया है। आचार्य ऊंचे आसन अर्थात चौकी पर विराजमान हैं। उनके हाथ में दण्ड हैं, बालक हाथ में पट्टी लिए हुए शिक्षारत है।ईसा के प्रारम्भ में **'अक्खरिका'** नामक खेल का उल्लेख मिलता है। इस खेल में बालक ने आकाश में या सहपाठी के पीठ पर उंगली से कोई अक्षर लिखने का सकेंत करता था तथा बालक से पूछता था कि कौन सा अक्षर है, ललित विस्तर से भी ज्ञात होता है की आचार्य कक्षा के बड़े बट्ट पर कोई अक्षरलिखता था, बालक उस अक्षर का नाम पुकारते थे और पट्ट पर या तख्ती पर या भूमि पर वैसी ही आकृति बनाते थे।

पेशावर संग्रहालय में बुद्ध की एक ऐसी मूर्ति है जिसमें वे एक चौकोर तख्ती पर लिखने में व्यस्त है।इससे यह ज्ञात होता है कि प्रारम्भिक शिक्षा में अक्षर ज्ञान कराने हेतु बौद्ध शिक्षा प्रणाली में एक निश्चित व्यवस्था थी।बालकों को वैज्ञानिक तरीके से खेल–खेल में अक्षरों का ज्ञान एवं अभ्यास कराया जाता था।

संगठित शिक्षण संस्थाओं का जन्म होने के पश्चात उच्च शिक्षा के लिए मठों में प्रवेश के समय बालक को लेखन और गणना का ज्ञान रहता था। अक्षर ज्ञान के स्थान को **'लिपिशाला'** और अक्षर सिखाने वाले आचार्य को **' द्वारकाचार्य'** कहते थे।दिव्यादान में **'लेखशाला'** लिखने के लिए **'तुला'** आदि का वर्णन है।कटाहक जातक में एक धनी वर्ग के बालक का उल्लेख है जो प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए पाठशाला में जाता था और उसके साथ उसका नौकर तख्ती लेकर जाता है। स्पष्ट है कि बालक तख्ती पर लिपि का अभ्यास करते थे तथा अक्षरों को उच्च स्तर में

दोहराते भी थे। बौद्ध मठों में जो छात्र दीक्षित होते थे उन्हें विशेष रूप से प्रारम्भिक शिक्षा की सभी सुविधाएं प्राप्त रहती थी।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में पाठ्यक्रम में अक्षरज्ञान पर अधिक बल दिया जाता है तथा अक्षरज्ञान कराने के लिए मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता था।प्रारम्भिक शिक्षा का पाठ्यक्रम अधिक विस्तृत नहीं था। सर्वप्रथम बालक को वर्णमाला के अक्षरों का ज्ञान कराया जाता था। बालकों की शिक्षा 'सिद्धमंचग' नामक पुस्तक से आरम्भ की जाती थी। बालक सर्वप्रथम इस पुस्तक का अभ्यास करते थे। 'सिद्धमंचग' अर्थ है ''पूर्णता'' या 'दक्षता'। इस प्रकार बालकों को वर्णमाला के ज्ञान में 'सिद्धमंचग' पुस्तक अत्यन्त सहायक थी।

हेनसांग ने प्रारम्भिक शिक्षा का विवरण देते हुए लिखा है कि बालक पहले वर्णमाला के अक्षरों को सीखता था।अक्षर ज्ञान में पूर्णता के पश्चात निम्नलिखित पांच विद्याओं का अध्ययन कराया जाता था–

1.शब्द विद्या –इसे व्याकरण की संज्ञा दी जाती थी।

2.**शिल्पासन विद्या –**इसके अन्तर्गत शिल्प तथा कला का ज्ञान कराया जाता था।

3.**चिकित्सा विद्या** : इसके अन्तर्गत चिकित्सा का प्राथमिक ज्ञान कराया जाता था।

4. **अध्यात्म विद्या** : इस विद्या के अन्तर्गत दर्शन, धर्म, संस्कृति आदि की शिक्षा दी जाती थी।

5. **हेतु विद्याः** इस विद्या के अर्न्तगतशिक्षार्थी को न्यायशास्त्र तथा तर्कशास्त्र का प्रारम्भिक ज्ञान दिया जाता था।

हेतु विद्या के अन्तर्गत '' न्याय द्वार तारक शास्त्र'' पुस्तक का अध्ययन किया जाता था जो सुप्रसिद्ध विद्वान नागार्जुन द्वारा रचित थी। इत्सिंग ने इस पुस्तक का चीनी भाषा में अनुवाद किया था। बालकों के लिए शिल्प, व्याकरण तथा चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा प्राप्त करना अनिवार्य था ।

बालकों को गणना का ज्ञान अनिवार्य था। मिलिन्दपन्हों में अंगुलियों के जोड़ो द्वारा गणना–ज्ञान दिए जाने का उल्लेख है।

इत्सिंग ने बच्चों की शिक्षा का आरम्भ 'सिद्धिस्तु' से किए जाने का उल्लेख किया गया है। इस पुस्तक का अध्ययन शिक्षार्थी छः माह में पूर्ण करते थे, तत्पश्चात व्याकरण का अध्ययन करते थे, जिसके लिए जयादित्य वामन की पुस्तक 'कुशिकावृत्ति' का उपयोग किया जाता था। यह पुस्तक पाणिनीकृत 'अष्टाध्यायी' की टीका थी।बौद्ध शिक्षा प्रणाली के प्रारम्भिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का विस्तृत वर्णन 'ललित विस्तर' में प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ के दसवें तथा बारहवें परिवर्त में शिक्षा पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

प्रत्येक अक्षर का वाच्य अर्थ बौद्ध दार्शनिक तत्वों के उपस्थापन के माध्यम से समझाया जाता था। जो निम्नलिखित है–

अ	से	अनित्य
आ	से	आत्मपरहित
इ	से	इन्द्रियवैकल्य
ई	से	ईतिबहुल
उ	से	उपद्रव बहुल
ऊ	से	ऊतरात्वजगत
ए	से	एषणासमुत्थानदोष
ऐ	से	ऐर्यायथश्रेयस
ओ	से	ओद्योत्तर
औ	से	औपपादुक
अं	से	अमन्औद्योत्पत्ति
अः	से	अस्तंगमन
क	से	कर्म विषाकावतार
ख	से	खसम सर्वधर्म
ग	से	गम्भीर धर्म प्रतीत्य समुत्पादावतार

घ से घन पटला विद्या मोहन्धकार विद्यतन

ड. से अंग विशुद्धि

च से चतुरार्य तय

छ से छन्दरागप्रहाण

ज से जरा–मरण–समतिक्रमण

झ से झष ध्वज बलनिग्रहण

ञ से ञापन

ट से पटोपच्छेदन

ठ से ठपनीय प्रश्न

करने के दृष्टान्त प्रायः मिलते है। इस विधि से गुरू–शिष्य संवाद के रूप में भी व्याख्यान दिये जाते थे। इस विधि में अध्यापक को विद्यार्थी पर अपने व्याख्यान के प्रभाव को समझने का पूर्ण अवसर मिलता था। इस विधि में अध्यापक द्वारा संबंधित विषय पर व्याख्यान दिया जाता था। फिर छात्र अपना मत प्रकट करता था, फिर अध्यापक यदि छात्र के मत में कोई कमी या त्रुटि देखता तो उसका खण्डन करता था। जिससे छात्र में शिक्षा को बौद्ध गम्य करने में सहायता मिलती थी।

बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में गुरू–शिष्य संवाद विधि का अत्यन्त प्रभाव था। बौद्ध सूत्रों में गुरू–शिष्य संवाद द्वारा शिक्षण किए जाने उल्लेख मिलता है। नागसेन तथा मिलिन्द का संवाद विश्व प्रसिद्ध है। गुरू शिष्य संवाद विधि में जहां एक ओर गुरू–शिष्य के संबंधों में निकटता आती थी वहीं शिष्य पर गुरू द्वारा पूर्ण ध्यान दिया जाता था जिससे छात्र के बुद्धिस्तर, ज्ञानस्तर, मानसिक स्तर का पूर्णतः विकास निश्चित हो जाता था जिससे शिष्य भविष्य में गुरू की भूमिका का निर्वाहन करने हेतु स्वयं को तैयार कर लेता था।

5.3 छात्रों की स्थिति–

बौद्धिकाल में शिक्षा केन्द्र विहार, मठ तथा विश्वविद्यालयों में ही होती थी। इन शिक्षा केन्द्रों का वातावरण वैदिक काल की ही भांति अनुशासनबद्ध था। गुरूकुल प्रणाली की ही भांति बौद्ध काल में गुरूकुल प्रथा प्रचलित थी। संघ, विहार तथा मठमें गुरूकुलों की ही भांति शिक्षा दी जाती थी। ये शिक्षा केन्द्र पर्वतों, गुफाओं, में स्थापित होते थे जो एकान्त में होते थे, जनसाधारण से दूर, बस्ती से दूर पर्वतों या एकान्त में बौद्ध शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की जाती थी, जिससे विद्यार्थियों को घर–परिवार का मोह न हो, जिससे शिक्षा केन्द्रों में शैक्षिक वातावरण बना रहे। जातकों सें विदित होता हैं कि आचार्यगण काशी जैसे भव्य नगरों का परित्याग कर हिमालय की कन्दराओं में चले जाते थें।गुरूकुल में रहते हुए विद्यार्थी सादा जीवन व्यतीत करते थे। उन्हें कठोर अनुशासन में रखा जाता था। उन्हें घर परिवार जाने की अनुमति नहीं थी तथा असुविधाओं तथा अभावों का सामना करना पड़ता था। विद्यार्थी चाहे धनी परिवार का हो, राजपरिवार का हो या निर्धन परिवार का सभी को सुविधा विहीन समानता से शिक्षा प्राप्त करनी होती थी। गुरूकुल व्यवस्था सम्बन्धी समस्त कार्य सभी छात्रों को परस्पर सामंजस्य से करना पड़ता था। धनी–निर्धन का कोई भेद नहीं था।

इस प्रकार यह व्यवस्था विद्यार्थियों को अधिक सहनशील, परिश्रमी, आत्मनिर्भर तथा दक्ष बना देती थी।गुरूकुलों का सुविधा विहीन होने पर इतनी अधिक ख्याति थी जिससे कारण इन शिक्षा केन्द्रो में अनेक राजपुत्र तथा धनिक पुत्र शिक्षा प्राप्ति हेतु अभावपूर्ण, असुविधापूर्ण वातावरण में भी प्रवेश हेतु उत्सुक रहते थे। इन शिक्षा केन्द्रो में विद्यार्थियों को पूर्णतय अनुशासनबद्ध जीवन व्यतीत करना होता था, नियमों का पालन करना अक्षरशः अनिवार्य था, नियमों का किंचित मात्र उल्लंघन छात्र को शिक्षा केन्द्र से निष्कासन का कारण बन सकता था।

विद्यार्थी को प्रातः काल के पूर्व ही ब्रम्हा मुहूर्त में शय्या का त्याग करना होता था, नित्य क्रिया के पश्चात् अध्ययन कार्य प्रारम्भ हो जाता था।

प्रातःकाल के अध्ययन के उपरान्त ही भोजन प्राप्त करने की अनुमति थी, भोजन के पश्चात विश्राम की व्यवस्था थी। मध्यान्ह के पश्चात् पुनः अध्ययन किया जाता था। संध्या–उपासना के रात्रि का भोजन करके गुरू की सेवा की जाती थी, तत्पश्चात् विद्यार्थी शैय्या पर जाते थे। गुरू की आज्ञा पालन करना शिष्य का प्रमुख कर्तव्य था। विद्यार्थी भिक्षाटन द्वारा भोजन प्राप्त करता था।विद्यार्थी लकड़ियां एकत्र करता था, जिससे अग्नि प्रज्जलित होती थी। विद्यार्थी अग्नि प्रज्जवलित करने के बाद ही भोजन प्राप्त करने का अधिकारी था। धम्म जीवन में सादगी अत्यन्त आवश्यक मानी गयी है। छात्रों को विद्याध्ययन काल में केश रखने का निषेध था। छात्र अपने केश मुड़वा देता था। छात्र के लिए छाता, जूता या कोमल शैय्या का उपयोग पूर्णतः वर्जित था।

छात्र को कठोर जीवन की शिक्षा दी जाती थी जिससे कोमलता छात्र के जीवन में शिक्षा–प्राप्ति के मार्ग में बाधा न बन सके। चरक ने राजा, माता–पिता या ईश्वर की भांति गुरू को परम पूज्य मानना छात्रों का परम कर्तव्य था।उन्होंने कहा कि जैसे कोई पुत्र पिता की, अर्थदाता की, या दास अपनें स्वामी की सेवा करताहै, उसी प्रकार बौद्ध विहारो में विद्यार्थी आचार्य की सेवा करते थे।आवश्यकता पड़ने पर शिष्य को आचार्य के बर्तन तथा वस्त्र साफ करने होते थे।छात्रों को किसी की निन्दा करना पूर्णतः वर्जित था। किन्तु यह समझना भूल होगी की छात्र आचार्य के दुर्गुणों की ओर ध्यान न दे।

गौतम बुद्ध ने गुरू के प्रति उचित सम्मान का आदेश दिया परन्तु यह भी व्यवस्था दी कि यदि आचार्य में दुर्गुण होतो शिष्य एकान्त में आचार्य का ध्यान आकर्षित करें तथा यदि उनकी दृष्टि बुरे कार्यो में लग गयी होतो शिष्य का कर्तव्य है कि आचार्य को बुरे जाने से रोकें।यदि आचार्य धर्माचरण से च्युत हो जाए तो शिष्य उसकी आज्ञा पालन करने या न करने हेतु स्वतंत्र है। आचार्य को इस बात का भी अधिकार नहीं था कि वह शिष्य को उस बात की आज्ञा दे, जिसका पालन करने से उसका

जीवन खतरे में पड़ जाय या जो धर्म के विधान के प्रतिकूल हो, यह व्यवस्था अन्यत्र नहीं प्राप्त होती है। जहां शिष्य को गुरू की आज्ञा का पालन करने में धार्मिक विधान को दृष्टि में रखना पड़ता है। यह बौद्ध शिक्षा प्रणाली की अपनी निजी विशेषता है। दिव्यादान में गुरू तथा शिष्य के पृथक–पृथक कर्तव्यों का वर्णन किया गया है। मिलिन्दपन्हों ने अपने शिष्य का गुरू के प्रति कर्तव्य तथा उनसे परस्पर सम्बन्धों का सुन्दर उल्लेख किया गया है।

मिलिन्दपन्हों के अनुसार शिष्य में दस गुणों का होना अनिवार्य है–

1. शिष्य अपने मन, वाणी तथा कर्म पर नियंत्रण रखे।
2. शिष्य की बुद्ध, धम्म तथा संघ में आसक्ति हो।
3. शिष्य सदैव ही अपने विचारों को ठीक रखे।
4. शिष्य में वैमनस्य का अभाव हो तथा धार्मिक व्यवहार में भी लड़ने की भावना न हो।
5. शिष्य सुख–दुख को समान समझे।
6. शिष्य धर्म को गिरते देख उसे उठाने का प्रयास करें।
7. शिष्य गुरू के आदेश से धर्म का पालन करे।
8. शिष्य उत्तेजना के भाव से किसी अन्य गुरू के पास न जाय।
9. शिष्य जो दे सकता है, प्रसन्नता से दे।
10. शिष्य शान्तिगामी हो।

इत्सिंग ने बताया है कि शिष्यों को आदेश प्रदान करना धर्म की अभिवृद्धि के लिए परमावश्यक था।आगे लिखता है कि प्रातःकाल दातून करने के पश्चात गुरू के पास आकर उन्हें भी दातून देना चाहिए।

आचार्य भी आवश्यकता पड़ने पर शिष्य की सहायता करते थे तथा उनकी देखभाल करते थे। शिष्य के बीमार होने पर आचार्य उसके माता–पिता की भांति सेवा करता है।भोजन में मांस, मदिरा, एवं मिष्ठान्न का वर्जन था क्योंकि इनके उपभोग से कामवासना उदीप्त होती है, जिससे युवावस्था में धर्म तथा नैतिक सदाचार में भटकाव हो सकता था।

इसलिए छात्रों को सादगी तथा हल्का सुपाच्य भोजन दिया जाता है, छात्रों को भी वस्त्र तथा आभूषणों को धारण करना पूर्णतः वर्जित था।छात्रों को पूर्णतः भिक्षु की भांति विद्यार्थी–जीवन व्यतीत करना होता था। सादा जीवन उच्च विचार के सिद्धान्त का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती थी। विहारों में विद्यार्थी को कठोर परिश्रम करने पड़ते थे। यह भी प्रमाण मिलते हैं कि तक्षशिला में जो छात्र गुरू दक्षिणा अग्रिम चुका देते थे उन्हें आचार्य के ज्येष्ठ पुत्र की भांति माना जाता था।वे गृहस्थी का कोई कार्य नहीं करते थे जबकि शुल्क न देने वाले विद्यार्थी गृहस्थी का कार्य करते थे। मुक्त शुल्क विद्यार्थी को धम्मान्तेवासी कहा गया है। ये छात्र दिन में आचार्य के खेतों में या घर पर काम करते थे तथा रात्रि में अध्ययन करते थे।शिष्यों में यह भेद बौद्ध शिक्षा की निजी विशेषता थी।

5.4 अध्यापक की स्थिति–

वैदिक काल से ही आचार्य–शिष्य की पवित्र पवित्रता चली आ रही है। गुरू–शिष्य के मध्य अत्यन्त सम्माननीय सम्बन्ध था। वृहदारण्यक उपनिषद में वर्णित है कि प्रवाहण जैबलि ने शिष्य रूप में आये उद्धातक का सस्नेह सम्मान किया था। अश्वपति ने अध्ययनार्थ उपस्थित उद्धातक सहित अन्य विद्वानों का स्वागत किया था।

छांदोग्य उपनिषद में लिखा है कि जब नचिकेता ज्ञान प्राप्ति हेतु यमराज के यहां गए थे, तो यमराज ने उनका हार्दिक अभिनन्दन किया। प्रायः गुरू अपने शिष्य को 'सौम्य' कहते थे, जिसका अभिप्राय था चन्द्रमा के सदृश आकर्षक और मधुर–गुण सम्पन्न। गुरू की शिष्य के प्रति सदा अभिन्नता रहती थी। महावग्ग में वर्णित है कि गुरू शिष्य के साथ पुत्रवत व्यवहार करता था।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में भी वैदिक काल की ही भांति गुरू को श्रेष्ठ एवं पूजनीय सम्मान प्राप्त था। गुरू को यह सम्मान मिलना स्वाभाविक ही

था क्योंकि विद्यालय के भवन एवं साज–सज्जा का छात्र पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना एक सच्चरित्र, विद्वान गुरू का, जो उसे शिक्षा प्रदान करते थे। महावग्ग, दिव्यादान तथा मिलिन्दपन्ह में आचार्य के गुणों के बारें में प्रकाश डाला गया है। भगवान बौद्ध ने यह स्पष्टतः कह दिया कि उपाध्याय ''उपशून्य' संविहारिक को पुत्रवत तथा वह विद्यार्थी अपने गुरू को पितातुल्य समझे। गुरू–शिष्य परस्पर आदर, विश्वास तथा सामान्य जीवन ध्येय द्वारा धर्म और विनय में पूर्णतय प्रगति कर उच्च श्रेणी पर पहुंच सकेंगे।

मिलिन्दपन्हों में आचार्य में निम्नलिखित पच्चीस गुणों का होना परमावश्यक बताया है–

1. आचार्य में उत्साह हो।
2. आचार्य शिष्य को आगे बढ़ाने का प्रयास करें।
3. आचार्य धर्मचरण के साथ रहे।
4. आचार्य शिष्य के साथ हंसी, मजाक न करे।
5. आचार्य शिष्य को पीछे हटने से रोके।
6. आचार्य शिष्य को खण्डित शिक्षा कभी न दे।
7. आचार्य शिष्य को अच्छे बुरे का ज्ञान दे।
8. आचार्य शिष्य को यह बताए कि उसे किन गांवो में तथा विहारो मे जाना चाहिए।
9. आचार्य शिष्य को बताए कि शिष्य को किसका परित्याग करना है, तथा किसमें आसक्त होना है।
10. आचार्य भिक्षुपात्र में जो प्राप्त होता है उसे शिष्य के साथ बांट ले।
11. आचार्य को सदैव शिष्य का भार निःसंकोच रूप में लेना चाहिए।
12. आचार्य शिष्य को शयन, भोजन, स्वास्थ्य, तथा स्वाध्याय, के संबंध में पूर्ण ज्ञान दें।
13. आचार्य शिष्य की ओर से ध्यान न हटाए।
14. आचार्य शिष्य को बल प्रदान करें।

15. आचार्य शिष्य के साथ आलाप न करें।

16. आचार्य शिष्य को अधूरा पाठ न पढ़ाए।

17. आचार्य शिष्य को स्नेह दृष्टि से देखे।

18. आचार्य शिष्य को सेवन तथा निषेध की वस्तु बता दें।

19. आचार्य शिष्य को भयभीत होने का आदेश दे।

20. आचार्य शिष्य को किन–किन का साथ करना है, बताए।

21. आचार्य शिष्य को उसकी शिक्षा का ध्येय बताए।

22. आचार्य शिष्य से दोष के लिए क्षमा मांगे।

23. आचार्य शिष्य से कुछ न छिपावे।

24. आचार्य शिष्य को पुत्रवत समझे।

25. आचार्य आपदा में शिष्य का त्याग न करें।

महावग्ग में भी गुरू–शिष्य के मध्य पिता–पुत्र की कल्पना की गयी है।महावग्ग में आचार्य को शिष्य का मानस पिता कहा गया है– ''**पुत्रभिवैनभिनकांक्षन्''।**

गुरू का कर्तव्य था कि अपने शिष्य को अन्धकार से प्रकाश की ओर लाए। जिस प्रकार शिष्य से विनय की अपेक्षा की जाती थी उसी प्रकार गुरू में भी चरित्रवान, विद्वता, तथा स्नेह वांछनीय था। गुरू के भी शिष्य के प्रति कर्तव्य थे। गुरू विद्यार्थियों से कोई भी विद्या गोपनीय नहीं रखता था।वस्तुतः शिष्य के दुर्गुणों का उत्तरदायी गुरू को ही माना जाता था, अतः शिष्य के दैनिक आचरण पर गुरू की दृष्टि और नियंत्रण परमावश्यक था।

इत्सिंग कहता है कि उस आचार्य से कसाई श्रेष्ठ है जो दीक्षित होने के बाद भी शिष्य को अशिक्षित रहने दे।जो गुरू अच्छी तरह से शिक्षा नही दे सकते वे ईश्वरीय नियम के उल्लंघन के दोषी होते है तथा निश्चित ही नरकगामी होते है। आचार्य में वक्तृत्वशक्ति, तर्कशक्ति और कठिन से कठिन विषय को समझाने की क्षमता होना परमावश्यक थी। सुयोग्य गुरू सुयोग्य शिष्य का ही निर्माण करता है। आचार्य के अध्यापन

के अतिरिक्त अन्य कर्तव्य शिष्य के प्रति उत्तरदायित्व थे। वह शिष्य के साथ पिता पुत्र की भांति व्यवहार करता था, वह शिष्य को नैतिक, अनैतिक कर्तव्यों के बारे में बताता था उसे बुरे कर्मो की ओर जाने से रोकता था, आचार्य शिष्य को सदाचारी बनाने हेतु पूर्णतःसजग रहता था। अस्वस्थता में आचार्य पिता की ही भांति शिष्य की देखभाल करता था। भगवान बुद्ध ने आचार्य को शिष्य की पूर्ण देखभाल करने के निर्देश दिए थे। बौद्धकालीन शिक्षा में आचार्य अत्यन्त कोमल, उदार एवं विशाल हृदय वाले होते थे। बौद्धकालीन शिक्षा में गुरू को अत्यन्त सम्माननीय स्थान प्राप्त था, आचार्य पूजनीय था परन्तु आचार्य पर सदाचारी, होने का प्रतिबन्ध था, आचार्य के सदाचारी एवं धार्मिक होने पर ही आचार्य की आज्ञा का पालन शिष्य करते थे। अन्यथा शिष्य गुरू की आज्ञा पालन करने के बंधन से मुक्त थे। बौद्धकाल में आचार्य एवं शिष्य के मध्य बहुत ही मधुर एवं घनिष्ठ संबंध था। भगवान बुद्ध ने भी आचार्य–शिष्य को परस्पर सम्मान, विश्वास तथा एकत्रित जीवन के कारण अभिन्न कहा था। आचार्यो का अपने शिष्यों के प्रति प्रगाढ़ वात्सल्य हो जाता था। कभी–कभी तो आचार्य अपनी पुत्रियों का विवाह शिष्यों के साथ कर देते थें, जातकों मे ऐसे कई उदाहरण प्राप्त होते है जब गुरू ने अपनी कन्या का विवाह अपने श्रेष्ठ शिष्य के साथ किया।

कभी–कभी शिष्य इस प्रकार के विवाह का विरोध भी करते थे। इस प्रकार हम पाते है कि बौद्ध युग में भी आचार्य द्वारा शिष्य का रक्षण तथा शिक्षण साथ–साथ चलता था। विदेशी यात्रियों ने भी आचार्य–शिष्य की पवित्र परंपरा की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। जहां एक ओर गुरू शिष्य के मध्य मधुर संबंध थे, वही दूसरी ओर गुरू शिष्य के अनैतिक आचरण पर भी दण्ड की व्यवस्था थी। आचार्य–शिष्य को नैतिक आचरण में त्रुटि के लिए शारीरिक दण्ड देते थे। तिलमुथ्थिजातक, वर्मा में उत्खनन से प्राप्त मिट्टी के फलक पर बने चित्र एवं अजंता से प्राप्त चित्रों से स्पष्ट होता था कि

बौद्ध कालीन शिक्षा में आचार्य शिष्य को गलतियों पर दण्ड देते थे। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में आचार्य द्वारा शिष्य को गलतियों करने पर शारीरिक दण्ड देना उचित माना जाता था।

वैदिक काल या उत्तरोत्तर वैदिक युग में शिक्षा पद्धति में वर्णभेद को प्रश्रय दिया जाता था। इन युगों में शूद्रों के साथ शिक्षा प्रदान करने में समानता का व्यवहार नहीं किया जाता था, ब्राम्हण को ही शिक्षा प्राप्ति के लिए सर्वश्रेष्ठ माना जाता था चाहे आचार्य सदाचारी हो या न हो, मात्र ब्राम्हण होना श्रेष्ठ माना जाता था। शिक्षा पद्धति में ब्राम्हण को सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था, शूद्रों के साथ भेद–परक वातावरण था। आचार्य द्रोण तथा एकलव्य का संबंध इस दिशा की ओर संकेत करता है। जब एकलव्य को शूद्र वर्ण होने के कारण द्रोणाचार्य ने उसे शिक्षा प्रदान करने में असमर्थता जताई थी परन्तु बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में वर्ण या जाति का प्रभाव नहीं था। वस्तुतः बौद्ध धर्म का मूलाधार समानता था इसलिए बौद्ध शिक्षा का वर्णो से प्रभावित न होना स्वाभाविक था।

भगवान बुद्ध स्वयं वर्ण–भेद में विश्वास नही करते थे। भगवान के इन विचारों के कारण बौद्ध धर्म सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य था तथा बौद्धकालीन शिक्षा में वर्ण भेद का कोई स्थान नहीं था। बौद्ध शिक्षा सभी वर्णो को दी जाती थी। सार्वभौमिकता एवं व्यावहारिकता बौद्ध शिक्षा की प्रमुख विशेषता थी। बौद्ध शिक्षा पद्धति में व्यक्ति को गुण, आचरण, तथा कर्मो के आधार पर स्थान दिया जाता था, न कि जन्म के आधार पर।

बौद्ध में सभी वर्ण समान थे। भगवान बुद्ध के परम प्रिय शिष्य उपाधि नापित थे। बौद्धकालीन शिक्षा मात्र भृत्यों, दासों, तथा ऋणी व्यक्तियों को प्राप्त नहीं थी क्योंकि अन्य व्यक्तियों के अधिकारों की हत्या अनुचित मानी जाती थी। शिक्षा प्रदान करने की यह व्यवस्था बौद्धकालीन शिक्षा की निजी विशेषता थी। बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में शिक्षा प्रदान करने मे आचार्य शिष्य से कोई शुल्क नहीं मांग सकता था, ऐसे कोई प्रमाण हमें नहीं प्राप्त होते है कि आचार्य ने शिक्षा का कोई मूल्य छात्र से

मांगा हो, कहा जा सकता है, बौद्धकालीन शिक्षा निःशुल्क थी। फिर भी शिष्यों द्वारा परम्परा का निर्वाहन करते हुए आचार्यो को दक्षिणा के रूप में बहुत सा धन दिया जाता था। इस धन का उपयोग संघो, मठों, विहारों तथा विश्वविद्यालयों की व्यवस्था में व्यय होता था। गुरू दक्षिणा प्रायः शिक्षा समाप्ति के पश्चात दी जाती थी, परन्तु इस बात के भी प्रमाण मिलते है कि कभी–कभी धनिक शिष्यों या गृहस्थों द्वारा पवज्जा के समय अग्रिम दक्षिणा प्रदान की जाती थी जो अभिभावक दक्षिणा देने में असमर्थ होते थे, उनके पुत्र गुरू सेवा द्वारा यह मूल्य चुका देते थे या उपसम्पदा के बाद भिक्षा मांगकर दक्षिणा देते थे।

दक्षिणा देने की अनिवार्यता नहीं था। परन्तु गुरू–दक्षिणा की परम्परा के कारण अभिभावक या छात्र अपनी संतुष्टि के लिए दक्षिणा देते थे। दक्षिणा को गुरू प्रदत्त शिक्षा का मूल्य नहीं माना जाता था। गुरू प्रदत्त शिक्षा को छात्र पर ऐसा ऋण माना जाता था जिसका मूल्य चुकाना असंभव था। दक्षिणा मात्र आदर तथा श्रद्धा का प्रतीक मात्र होती थी। बौद्धकालीन शिक्षा में गुरू प्रदत्त शिक्षा को अमूल्य माना जाता था।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में हमें परीक्षाओं का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। यद्यपि विषय कंठस्थ कराने के लिए प्रतिदिन दैनिक परीक्षाओं का आयोजन होता था लेकिन यह परीक्षा पाठ को कंठस्थ कराने का अभ्यास मात्र थी, क्योंकि बौद्ध शिक्षामें एक पाठ पूर्ण होने पर ही अगले अध्याय का अध्ययन कराया जाता है, अध्याय के पूर्ण न होने पर अध्याय की पुनरावृत्ति चलती रहती थी। विद्यार्थी जब अपने सभी अध्याय पूर्णतः समझ जाता था तभी उसको पारंगत माना जाता था। बौद्ध शिक्षा पद्धतिमें उपाधियों या प्रमाणपत्रो का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इस संबंध में ह्वेनसांग लिखता है कि सातवीं सदी के कुछ पण्डित यश–प्राप्ति के लिए नालन्दा का नाम चुराते थे।

शिक्षा उपरान्त छात्र को स्नातक कहा जाता है तथा स्नातक को उसके शिक्षा केन्द्र के स्नातक नाम से जाना जाता था, जैसे तक्षशिला का

स्नातक, नालन्दा का स्नातक। इसे ही उपाधि की संज्ञा दी जा सकती है। बौद्ध शिक्षा पद्धति में उपाधियों का कोई स्थान नहीं था। मात्र शिक्षा प्रदान करने तथा शिक्षा को अपने जीवन में ढालने का प्रयास किया जाता था, छात्र अपनी ज्ञान–पिपासा की शान्ति के लिए शिक्षा ग्रहण करते थे। बौद्ध शिक्षा उपदेशात्मक थी, जिसमें अध्यापक को धर्म मे, समाज में सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था, परन्तु अध्यापक के लिए सदाचारी तथा कर्तव्यनिष्ठ होना अनिवार्य था।

5.5 प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा–

बौद्ध शिक्षा में मनुष्य का परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति था। बौद्ध धर्म का मूलाधार दुःखो का अन्त था। निर्वाण को ही दुःखो का अन्त माना जाता था। मोक्ष की प्राप्ति के लिए या तो गहनता या साधना परमावश्यक था या ज्ञान प्राप्त करना। बौद्ध शिक्षा में विद्यार्थी जीवन की आयु पच्चीस वर्ष निर्धारित थी, किन्तु कुछ उपासक जीवन पर्यन्त सतत् अध्ययन में लगे रहते थे, इन उपासको का उद्देश्य ज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करना था। उपासक जीवन को मोहमाया से दूर रहकर ज्ञान प्राप्त हेतु सदैव प्रयासरत रहते थे। उपासको का एक मात्र लक्ष्य था ज्ञान प्राप्ति। ह्वेनसांग वर्णन करता है कि सारे कष्टों को भूलकर ये साहित्य और विज्ञान में अपनी प्रवीणता बढ़ाते ही रहते थे। धनिक तथा राजपुत्र भी परिव्राजक होकर भिक्षाटन कर जीवन यापन करते थे। तथा सत्य तथा ज्ञान में ही अपना सम्मान समझते थें, सदैव अपनी ज्ञान पिपासा की शान्ति के लिए विचरण करते रहते थे। जातकों से ज्ञात होता है कि देशाटन से भी उपासक शिक्षा प्राप्त करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा ग्रहण की यह विधि आजीवन शिक्षा प्राप्त करने वाले शिष्यों के लिए ही थी। देशाटन का उल्लेख उपसम्पदा के बाद किया गया है। ये देशाटन एक प्रकार से शैक्षिक भ्रमणों से देश–काल–वातावरण, व्यवसाय, परम्पराओं तथा

विषमताओं आदि का परिचय प्राप्त कर अपने ज्ञान को सार्वभौमिक रूप प्रदान करता था।

सतत् एवं प्रौढ शिक्षा की आवश्यकता इस विचार धारा पर आधारित थी, कि संरचित अधिगम या सुसम्बद्ध रीति से सिखाने–पढाने का कार्य जीवन के कुछ प्रारम्भिक वर्षो तक ही सीमित नहीं होना चाहिए अपितु इसे आजीवन चलने वाला एक उद्यम या कार्य होना चाहिए। सतत् शिक्षा का फ्रांसीसी प्रतिरूप है–''एडूकेशन परमानेन्ट'' जिसका अर्थ होता है, 'चिर शिक्षा'। इस प्रकार सतत् शिक्षा इस मूलभूत सिद्धान्त पर आधारित है कि किसी व्यक्ति की जीवन पर्यन्त शिक्षा प्राप्त करना है नवीन–नवीन अनुसंधानों का विकास कर शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त सुधार लाना है।

शिक्षा में सतत् तथा चिर गतिशील तत्व का समावेश हो जाता है। अर्थात् सतत् शिक्षा का अर्थ ''आजीवन शिक्षा'' है। आजीवन शिक्षा या सतत् शिक्षा मनुष्य के व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के लिए सतत्

चलने वाली सृजनात्मक प्रक्रिया हैं, जिसका उद्देश्य हर प्रकार के अधिगम अनुभवों को समन्वित करना है। सतत् शिक्षा ऐसा व्यापक सम्प्रत्यय है जो सभी रूपों में चलने वाली शैक्षिक क्रिया कलापों को अन्तर्निहित कर लेता है इसके अन्तर्गत औपचारिक, अनौपचारिक, प्रौढ़ शिक्षा सभी प्रकार की शैक्षिक प्रणालियां आजाती है। क्योंकि सतत् शिक्षा मूलतः शिक्षा को ही जीवन और जीवन को ही शिक्षा समझने वाला संप्रत्यय है।

व्यापक अर्थो में सतत् शिक्षा एवं आजीवन शिक्षा पर्यायवाची है और इन्हें जन्म से मृत्यु तक अविरल चलने वाले शैक्षिक प्रवाह के रूप में समझना उपयुक्त है। बौद्धकालीन शिक्षा प्रणाली में बौद्ध भिक्षु आजीवन अध्ययन प्राप्ति में संलग्न रहते थे क्योंकि उनके अध्ययन में विवाह जैसी कोई बाधा नहीं थी।

कदाचित इसी कारण इस प्रकार विद्यार्थियों के लिए पृथक पाठ्यक्रम था, वह अपेक्षाकृत विस्तृत रूप धारण किए रहते थे। बौद्ध भिक्षु सभी धर्मो के ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन करते थे तथा उनके तत्वज्ञान द्वारा अपना ज्ञानवर्धन करते रहते थे। नालन्दा बौद्ध भिक्षुओं की शिक्षा के सम्बंन्ध मे हुई ली लिखते है कि ''भिक्षु महायान शाखा, हीनयान की अठारह शाखाओ, वेद, हेतुर्विद्या, शब्द विद्या, चिकित्सा विद्या, सांख्य एवं अन्य साहित्यिक ग्रन्थों का अध्ययन करते थे। ''बौद्ध भिक्षुओं विशेषकर त्रिपिटक, अश्वघोष कृत बुद्ध चरित, नागार्जुन कृत जातक मात्रा, योगाचार शास्त्र का अध्ययन कराया जाता है बौद्ध भिक्षु बौद्ध दर्शन में पूर्णतः दक्ष होते थे। वस्तुत अन्य दर्शनों के अध्ययन तथा तुलनात्मक अध्ययन उसी बुद्धि में प्रखरता उत्पन्न करता था। बौद्ध भिक्षु उपसम्पदा की विधि के पश्चात दीक्षान्त हो जाता था परन्तु इसके पश्चातभी उनकी सतत् शिक्षा चलती रहती थी वे विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त कर अपने विषय ज्ञान समुन्नत और उत्कृष्ट करने का प्रयास करते रहते थे। गुरू–शिष्य सम्बंन्ध पूर्ववत प्रगाढ़ रूप में विद्यमान रहते थे। धार्मिक अवसरों पर शिष्य आचार्यो को आमंत्रित कर सम्मान करते थे उन्हें उपहार, दक्षिणा सहर्ष प्रदान करते थे। आचार्य भी अपने शिष्यों से स्वाध्याय की चर्चा कर उनकी शंकाओ का समाधान करते रहते थे।

दीक्षान्त के बाद भी व्यक्ति गृहस्थ जीवन का पालन करते हुए भी स्वाध्यायरत रहता था। जातक कथा में लिखा गया है कि सतत् शिक्षा, यद्यपि भिक्षुओं के लिए अनिवार्य थी, परन्तु जन साधारण में भी सतत्शिक्षा का प्रचलन था। बौद्ध शिक्षा दर्शन मेंसतत् शिक्षा को आजीवन शिक्षा के पर्याय के रूप में देखा जा सकता है। यह प्रचलित था कि ब्राह्मण और मित्र की हत्या से जो पाप होता है वही पाप एक बार पढ़े हुए पाठ को विस्मृत करने से होता है, सम्भवतः इसलिए बौद्ध प्रणाली में भिक्षुओं के लिए आजीवन शिक्षा की कल्पना की गयी थी। वस्तुतः बौद्ध दर्शन ने इस तथ्य पर बल दिया कि परिस्थितियों के परिर्वतनशील होने से सामाजिक

समरसता घटती है, अतएव सामाजिक समरसता स्थापित करने का कार्य शिक्षा कर सकती है, इसके लिए सतत् शिक्षा की परम आवश्यकता है। सतत् शिक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान या विद्या को स्थायित्व दिया जा सकता है तथा नवीन अनुसंधानों से शिक्षा में सुधार किया जाता है, जिससे ज्ञान में शोधात्मक प्रवृत्ति बढ़ती है। बौद्ध शिक्षा में आचार्यो का निर्देश था कि प्रत्येंक 'स्नातक' को पढ़े हुए ग्रन्थों के किसी न किसी अंग की आवृत्ति प्रतिदिन नियमित रूप से करनी चाहिए, इसी को स्वाध्याय भी कहा जाता था। अतएव स्वाध्याय ही सतत् शिक्षा है। उपसम्पदा के समय आचार्य स्वाध्याय में प्रमाद नकारनेके लिए विशेष रूप से उपदेश होते थे। सतत् शिक्षा के कारण प्रायः विद्वानों के मध्य शास्त्रार्थ ज्ञान चर्चायें और विद्धगोष्ठियां सम्पन्न होती थी, जिसको निष्कर्षित ज्ञानका प्रभाव सम्बंन्धित विद्वान के ज्ञान की वृद्धि में सहायता देता है। इस गोष्ठियों में अनेक बुद्धिमान और गुणी लोग सम्मिलित होकर ज्ञानवर्धन करते थे।

बौद्ध शिक्षा में सतत् शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा के प्रभाव बौद्ध दर्शन पर स्पष्टतया पड़ा जिसके बौद्ध दर्शन सारगर्भित, धर्मनिरपेक्ष तथा सर्वग्राह्म हो गया। चीनी यात्रियों में बौद्ध धर्म दर्शन की भूरि–भूरि प्रशंसा की है। सतत् शिक्षा का प्रमुखतः प्रभाव बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार पर पड़ा, बौद्धधर्म सुदूरवर्ती देशों में भी फैल गया तथा जनसाधारण बौद्ध धर्म के प्रति विशेष निष्ठा उत्पन्न हो गयी थी।

षष्ठम अध्याय

6.1 शोध का संक्षिप्त विवरण–

वर्तमान वैश्विक समाज में व्याप्त अनीति,भ्रष्टाचार, आंतकवाद ,अन्तवैयक्तिक संबंधो में गिरावट मानवीय मूल्यो का ह्रास आदि विशालकाय समस्याएं अपने स्वरूप एवं प्राकृतिक विशेषताओं के कारण समाज के मूलभूत संरचना एंव प्रक्रियाओ को पूरी तरह से प्रभावित कर रहे है। जिसके लिए बहुत कुछ जिम्मेदारी शिक्षा की उठानी पडेगी। मात्र शिक्षा के उदेश्यो एंव मूल्यो में ही यथोचित परिवर्तन कर देने से सुधार की अपार सम्भावनाओ में से अधिकांश की प्राप्ति संभव हो जाएगी इस दृष्टिकोण से जब हम बौद दर्शन के शैक्षिक विचारो की तरफ देखते है तो हमें पथ प्रदर्शित करने वाले मूलभूत विचार एवं समाज के पुनः निर्माण के लिए आवश्यक आत्मबल प्राप्त होता है। वर्तमान शिक्षा व्यक्ति को एक सफल उद्यमी, अधिकारी, विधार्थी, श्रमिक तो बना सकती है परन्तु उनके व्यक्तित्व की पूर्णता तभी सम्भव है जबकि व्यक्ति के जीवन के नैतिक मूल्यों कि तरफ यथोचित ध्यान देते हुए शैक्षिक मूल्यों का निर्धारण किया जाएं। मानव के जीवन मूल्यो में उसकी मान्यताएं, आदर्श, परम्पराएं आदि आती है। अतः कहा जा सकता है कि वह शिक्षा, शिक्षा नही है जो जीवन के मूल्यो, आदर्शो एवं मान्यताओ का परिचय न करवाती हो इस तरफ संकेत करते हुए बुद्ध ने कहा है कि हमें उन विचारो की अनुभुति कर लेने की आवश्यकता है जो जीवन–निर्माण, मनुष्य–निर्माण तथा चरित्र–निर्माण में सहायक हो।

बौद्ध दर्शन का प्रभाव तत्कालीन समाज पर विशेषकर परिलक्षित होता है तथा शिक्षा के क्षेत्र में बौद्ध दर्शन ने पर्याप्त प्रभाव डाला था तथा तत्कालीन शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन किये इस कारण इस दृष्टि से बौद्ध शिक्षा आदर्श मानी जा सकती है। आज वर्तमान शिक्षा में जिन सुधारों एवं परिवर्तन की चर्चाएं हो रही है, वह परिवर्तन तथा सुधार लाने

में बौद्ध शिक्षा मार्ग दर्शन कर सकती है। बौद्ध शिक्षा में वे समस्त विशेषताएं विद्यमान थी, जिनकी आज आवश्यकता अनुभव की जा रही है। इन्हीं विशेषताओं को उद्घाटित करने के उद्देश्य से ही शोधार्थी यह शोध प्रस्तुत कर रही है।

प्रस्तुत शोध में छः अध्याय है जो क्रमशः समस्या और उसकी पृष्ठभूमि, नैतिक मूल्य वर्तमान अध्ययन की आवश्यकता एवं महत्व , शोध समस्या का औचित्य एवं कथन, शोध प्रबन्ध की सीमाएं, वर्तमान अध्ययन के उद्देश्य , शोध विधि, सम्बद्ध साहित्य का अर्थ, सम्बद्ध साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता, समस्या से सम्बन्धित शोध प्रबन्धों का विवरण, सम्बद्ध साहित्य की विवेचना एवं वर्तमान शोध से तुलना, ज्ञान मीमांसा एवं मूल्य मीमांसा, बौद्ध शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, छात्रों तथा अध्यापकों की स्थिति प्रौढ़ एवं सतत् स्त्री शिक्षा का विकास एवं समाज पर प्रभाव, से सम्बन्धित है तथा षष्ठम अध्याय में शोध का संक्षिप्त विवरण देते हुए निष्कर्ष निकाला गया है तथा निष्कर्षो के आधार पर सुझाव तथा भावी अध्ययन के लिए सुझाव देने का प्रयास शोधार्थी द्वारा किया गया है।

प्रस्तुत शोध बौद्ध दर्शन के शैक्षिक चिंतन एवं नैतिक मूल्यो का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रांसगिकता का अध्ययन, बौद्ध दर्शन की ज्ञान मीमांसा, मूल्य मीमांसा, नीतिशास्त्र एवं राष्ट्रबौद्ध के माध्यम से किया गया है, बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि तथा उद्देश्य पर प्रकाश डाला गया है । छात्र तथा अध्यापकों की स्थिति की संकल्पना की गयी है। प्रौढ़ शिक्षा, सतत शिक्षा, स्त्री शिक्षा एवं सह शिक्षा पर भी प्रकाश डाला गया है। बौद्ध के मनोविज्ञान का संक्षिप्त वर्णन कर व्यक्तित्व विकास को नैतिक मूल्यो से जोडा गया है। तथा सम्बद्ध साहित्य के वर्णन द्वारा शोध ग्रन्थ में बौद्ध शिक्षा की स्थिति प्रकट करने का प्रयास किया गया है। इस शोध प्रबन्ध में बौद्ध दर्शन के शैक्षिक विचारधारा, नैतिक मूल्य एवं इसकी प्रासंगिकता का उल्लेखनीय वर्णन किया गया हैं।

6.2 निष्कर्ष –

प्रस्तुत शोध में बौद्ध दर्शन की शैक्षिक विचारधारा एवं नैतिक मूल्य तथा वर्तमान में इसकी प्रासंगिकता स्पष्टतः परिलक्षित होती है । बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य वस्तुतः व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करना था, परन्तु बौद्ध शिक्षा में शारीरिक विकास की उपेक्षा नही की गयी थी, उद्देश्यानुरूप ही पाठ्यक्रम की व्यवस्था थी। आध्यात्मिक विषयों के साथ–साथ लौकिक विषयों को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया था। धर्म तथा दर्शन के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता था। बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में बौद्ध शिक्षा दर्शन के अतिरिक्त अन्य दर्शनों का भी अध्ययन कराया जाता था। अन्य दर्शनों की गूढ़ एवं सत्य तथ्य बौद्ध दर्शन में स्वीकार किए जाते थे। भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के लिए नियम तथा आचार संहिता थे, जिनका पालन अनिवार्य था। जहां एक ओर प्रतिभाशाली तथा बुद्धिमान छात्रों के लिए विशेष ध्यान दिया जाता था तथा मन्द बुद्धि छात्रों के लिए पृथक शिक्षण व्यवस्था थी तथा पृथक–पृथक विधियों का प्रयोग किया जाता था। छात्र–आचार्य सम्बन्ध व्यवहारिक तथा मधुर थे। छात्र अपना कर्तव्यपालन करते थे वहीं आचार्य भी अपने उत्तरदायित्वों का पूर्ण निर्वाह करते थे। वैदिक शिक्षा की भांति बौद्ध शिक्षा में भी शास्त्रार्थ तथा अनुसंधान को महत्व दिया जाता था। कतिपय छात्र ज्ञान प्राप्ति हेतु अपना पूर्ण जीवन उत्सर्ग कर देते थे। स्त्रियों के लिए पृथक विद्यालयों का उल्लेख कही भी नही प्राप्त होता हैं अतएव कहा जा सकता है कि सह–शिक्षा की व्यवस्था थी। स्त्रियों को भी पुरूषों की ही भांति समान रूप से शिक्षा प्रदान की जाती थी। शिक्षा प्रदान करने में वर्ण व्यवस्था का कोई महत्व नही था, योग्य छात्र किसी भी वर्ग से सम्बद्ध थे, उन्हे निष्पक्षता से शिक्षा प्रदान की जाती थी।

छठी शताब्दी ई0पू0 में धार्मिक क्रान्ति के परिणास्वरूप बौद्ध धर्म का उदय हुआ तत्कालीन समाज रूढ़िवादिता एवं वर्णभेद की संकीर्णता से ग्रस्त था, तथा ब्राह्मण वर्ग का समाज में प्रधान्य था, ब्राह्मण कुल में जन्म लेना ही श्रेष्ठता की पहचान माना जाता था, कर्म का महत्व कम होता जा रहा था। बौद्ध धर्म का जन्म चूंकि ब्राह्मण धर्म के प्रतिरोध के कारण हुआ था अतः बौद्ध धर्म ने ब्राह्मण शिक्षा के समानान्तर विहारों तथा मठों में शिक्षा का कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। कालान्तर में इन विहारों ने विश्वविद्यालयों का रूप ले लिया जिसके परिणामस्वरूप तक्षशिला, नालन्दा, वल्लभी, विक्रमशिला तथा अनेक शिक्षा केन्द्रों एवं विश्वविद्यालयों का उदय हुआ। इन शिक्षा केन्द्रों तथा विश्वविद्यालयों ने शिक्षा के क्षेत्र में मानदण्ड स्थापित किए, जिनका महत्व सम्पूर्ण विश्व में आज भी दिखाई देता है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली उन अभागे बालकों को कोई दूसरा अवसर नही देती जो इसके संकीर्ण प्रवेश द्वार में प्रवेश नही ले पाते या जो आर्थिक या सामाजिक कारणों की विवशता से त्रस्त होकर इससे बाहर निकल जाते है। यह वर्तमान शिक्षा प्रणाली निहित स्वार्थोकी सहायता करने की प्रवृत्ति को बढावा देती है, यथास्थिति को प्रोत्साहित करती है और शैक्षिक समानता के अवसरों का गला घोंटती है। इसके दुश्चक्र में फॅसकर सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा की संवैधानिक प्रतिवद्धता को भी स्वतंत्रता के लगभग 60 वर्ष होने पर भी हम पूर्ण नही कर सके है। देश में आज भी लगभग 25 प्रतिशत लोग निरक्षर है। इस कारण बौद्ध शिक्षा की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में प्रासंगिकता है वस्तुतः वर्तमान शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन करने की महती आवश्यकता है।

वर्तमान शिक्षा का समावेश कर हम वर्तमान समाज को पुनः एक बार सुशिक्षित, सुपोषित एवं सुरक्षित कर सकते है। बौद्ध शिक्षा जहॉ एक ओर लाखों करोडों लोगो में शिक्षा के माध्यम से प्राण फूंकने में समर्थ है, तो दूसरी ओर वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की कमियों को दूर करने में मार्ग दर्शन कर सकती है।

6.3 सुझाव–

6.3.1 निष्कर्षों के आधार पर सुझाव–

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन आवश्यक है। वर्तमान शिक्षा को धर्म, संस्कृति, दर्शन, अध्यात्म, नैतिक मूल्यों, जीवन मूल्यों, आदर्शों से युक्त करना होगा और इसकी निरन्तरता को स्थापित करना होगा। इस दृष्टि से बौद्ध शिक्षा दर्शन की उपयोगिता एवं महत्व असंदिग्ध है। बौद्ध शिक्षा प्रणाली कितनी प्राचीन है, फिर भी आधुनिक जीवन में वह अप्रत्यक्ष रूप से विद्यमान है, अतएव, आधुनिक भारत की समझदारी और उसके विकास के मार्ग के प्रशस्तीकरण की आवश्यकता यह मांग करती है कि प्राचीन बौद्ध शिक्षा दर्शन का सर्वागींण तथा व्यापक अध्ययन किया जाए। स्पष्ट है कि बौद्ध शिक्षा प्रणाली में वे सभी गुण विद्यमान है जो एक आदर्श शिक्षा प्रणाली में होने चाहिए बौद्ध शिक्षा प्रणाली अपनाकर आधुनिक शिक्षा प्रणाली को समृद्ध बनाया जा सकता है, व्यक्ति के आध्यात्मिक विकास द्वारा ही व्यक्ति का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है। व्यक्ति के भावी जीवन की दिशा तथा मानव समाज की संरचना मूलतः शिक्षा पर आधारित है।

वर्तमान समय में विश्व के बहुआयामी विकास की गति इतनी तीव्र तथा सीमा इतनी अबाध है कि इसके साथ चलना तथा सीमा के समीप पहुंचना कभी–कभी दुरूह कार्य सा प्रतीत होता है। समय–समय पर शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन तथा समायोजन ही ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा इस दिशा में कुछ सहायता मिल सकती है। आधुनिक शिक्षा प्रणाली के स्वरूप निर्धारण में बौद्ध शिक्षा दर्शन को अपनाया जा सकता हैं।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली व्यावहारिक एवं मानसिक थी, बौद्ध शिक्षा में अधिकतर समय तो व्यवहार कुशलता उभारने और उसके साथ आदर्शवादिता, शालीनता आदि का अभ्यास कराने का उपक्रम चलता था।

जो सर्वजनीन बहुमुखी पुनरूत्थान के लिए तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली को और अधिक प्रभावी एवं कारगर बनाने के लिए हो, हमें उसी विद्या, उसी शिक्षा व्यवस्था से प्रेरणा लेनी चाहिए। समय के साथ–साथ परिस्थितियां भी बदल गयी है, इसीलिए पूर्णतः बौद्ध शिक्षा पद्धति को अंगीकृत करना संभव नहीं है पूर्णतः उसकी प्रतिमूर्ति स्थापित करना संभव नहीं है। परन्तु इतना तो किया ही जा सकता है कि बौद्ध शिक्षा पद्धति का स्वरूप एवं अनुशासन गम्भीरतापूर्वक समझा जाए और उसके सार को वर्तमान शिक्षा क्रम में समाविष्ट कर लिया जाये। वह पद्धति ज्यों की त्यों लागू नहीं हो सकती, पर उस पद्धति के वे सिद्धान्त तो शाश्वत है शिक्षा के साथ प्रतिभा निखार तथा सुसंस्कारिता सम्वर्द्धन का क्रम तो जोड़ा जा सकता है।

आज के अध्यापक को अपनी गरिमा एवं उत्तरदायित्व अधिक गम्भीरता से समझने होगे। शिक्षा के साथ सुसंस्कारिता जोड़ने के लिए प्राणपण से प्रयास करना होगा अन्यथा शिक्षा की उपेक्षा और शिक्षकों की अवज्ञा का जो माहौल चल पड़ा है, वह बढ़ता ही जायेगा।

अरूचिपूर्वक किसी प्रकार पाठ्यक्रम पूरा करा देने पर तो शिक्षक अपनी महत्ता और उपयोगिता में से किसी एक को भी बनाए न रख सकेंगे, इसलिए विद्यार्थियों की उन्नति और अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए शिक्षक संवर्ग को यह नया क्रम अपनाना होगा जों पाठ्यक्रम पूरा कराने के साथ ही साथ छात्रों का व्यक्तित्व उभारने, प्रतिभा निखारने और उन्हें आदर्शो के प्रति निष्ठावान बनाने में पर्याप्त सफलता मिल सकती है।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षा के उद्धेश्यों के अनुरूप ही शिक्षा का पाठ्यक्रम निर्धारित था, जहां एक ओर पाठ्यक्रम में ऐसे विषय रखे गये थे, जिनसे आध्यात्मिकता का विकास होता था वहीं दूसरी ओर व्यवसायपरक शिक्षा भी दी जाती थी, ताकि विद्यार्थी अपने भविष्य के प्रति चिन्तित न रहें इस प्रकार बौद्ध शिक्षा में उद्धेश्यों तथा पाठ्यक्रम का

संबंध था। आधुनिक शिक्षा प्रणाली को भी इस विशेषता से युक्त करना होगा, उद्धेश्यों तथा पाठ्यक्रम में संबंध स्थापित करना होगा, पाठ्यक्रम को इस प्रकार से व्यवस्थित करना होगा जिससे समाज के विकास की गति एवं दिशा निश्चित हो सके। समाज में व्याप्त परंपरागत कुरीतियों, नैतिक मूल्यों के पतन आदि पर नियंत्रण हेतु प्राथमिक स्तर से ही शिक्षा का ऐसा पाठ्यक्रम तथा पाठ्य पुस्तकों की रचना करनी होगी जिनके माध्यम से इन पर नियंत्रण किया जा सके।

बौद्ध शिक्षा का पाठ्यक्रम **श्रेष्ठता**' पर आधारित था, अतएव वर्तमान शिक्षा के पाठ्यक्रम निर्धारण में बौद्ध पाठ्यक्रम मार्गदर्शन कर सकता है। पाठ्यक्रम को बौद्ध शिक्षा के पाठ्यक्रम की भांति रोजगारपरक बनाया जाना चाहिए ताकि विद्यार्थी भविष्य में अपने पैरों पर खड़ा होकर आत्मनिर्भर बन सके। नयी पीढ़ी में सद्गुणों का विकास करने, नैतिक मूल्यों की स्थापना तथा प्राचीन समन्वयकारी संस्कृति के ज्ञान की प्राप्ति हेतु बच्चों में अच्छे संस्कार बनने आवश्यक हैं, इस हेतु स्त्रियों में मातृत्व के गुणों का विकास तथा उन्हें गृहकार्य में दक्ष किया जाना अपेक्षित है। जिससे वे बच्चों में जन्म से ही अच्छे संस्कार डाल सके। अतः स्त्री शिक्षा के विकास के साथ–साथ स्त्रियों के लिए इस प्रकार का पाठ्यक्रम निर्मित किया जाना चाहिए, जिससे वे इन गुणों से सम्पन्न हो सकें।

शैशवावस्था से प्रौढ़ावस्था तक विद्यार्थी की क्षमतानुसार पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाना चाहिए। विकास क्रम के विभिन्न सोपानों पर आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम समायोजित होना चाहिए। प्रौढ़ एवं सतत् शिक्षा के माध्यम से देश की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं शैक्षिक प्रगति की जा सकती है। निरक्षरता उत्पादन को घटाती है तथा औपचारिक शिक्षा बेकारों की फौज बढ़ाती है, इस दुष्चक्र से निकलने का एक मात्र साधन प्रौढ़ एंव सतत शिक्षा है।

प्रौढ़ एवं सतत शिक्षा के द्वारा ही जनता को नागरिकता के ज्ञान प्रजातंत्र के महत्व को बताकर वर्तमान राजनीतिक भ्रष्टाचार को समाप्त किया जा

सकता है। देश के बहुमुखी विकास के लिए सतत शिक्षा एक आधारभूत आवश्यकता है। यदि देश सतत शिक्षा के लिए पर्याप्त सुविधा एवं साधन विकसित नहीं कर पाएगा तो उसे यह आशा नहीं करनी चाहिए कि नवीन ज्ञान एवं उच्च तकनीक के क्षेत्र में वह कुछ प्राप्त कर सकेगा। हजारों वर्ष पूर्व बौद्ध शिक्षा प्रणाली में अपनायी गयी सतत् शिक्षा का अध्ययन करके हम वर्तमान सतत् शिक्षा के सम्प्रत्यय को सरंचित एवं सुगठित कर सकते है। सर्वजनीन बहुमुखी पुनरूत्थान के लिए तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली को और अधिक प्रभावी एवं कारगर बनाने के लिए हो सकते है।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली का महत्वपूर्ण पक्ष था उसका धर्म, दर्शन तथा आध्यात्म से सुसम्बद्ध होना। आधुनिक शिक्षा प्रणाली धर्म, दर्शन तथा आध्यात्म से बहुत दूर हो चुकी है। मानव जाति का उद्धार आत्मज्ञान से ही संभव है। आत्म ज्ञान आध्यात्मज्ञान के बिना संभव नहीं है। अतः वर्तमान शिक्षा प्रणाली में दर्शन तथा धर्म को भी पाठ्यक्रम में स्थान देना होगा। धर्म एवं दर्शन से दूर होने के कारण ही आज मानव अपने नैतिक मूल्यों को खो चुका है। मानव का ह्रदय मात्र आत्मज्ञान द्वारा ही परिवर्तित हो सकता है। मानव जीवन के पहलू हैं –एक भौतिक तथा दूसरा आध्यात्मिक।

आज मनुष्य अपना अधिकांश समय भौतिक संसार को ही देता है। दूसरें पक्ष की ओर बहुत ही कम सोचता है जबकि दोनों ही एक दूसरे के पूरक है, जिस प्रकार से रेलगाड़ी तभी सही दिशा में चलती है जब दोनों पटरियां समान्तर होती है ठीक उसी प्रकार से मनुष्य जीवन रूपी गाड़ी तभी सही–सही चलेगी जब उसकी भौतिक एंव आध्यात्मिक रूपी दोनों पटरियां समान होगी। आध्यात्म ज्ञान के प्रचार–प्रसार से ही आज समाज में राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, मानव प्रेम एवं सद्भावना की शिक्षा प्रदान की जा सकती है। आज का मानव अपने लक्ष्य से दिशाहीन हो चुका है। अतः आधुनिक शिक्षा में बौद्ध शिक्षा का समावेश ही वर्तमान दिशाहीन मानव का मार्गदर्शन कर सकता है।

6.3.2भावी अध्ययन के लिए सुझाव :

प्रस्तुत शोधग्रन्थ से प्राप्त निष्कर्षों से भावी अध्ययन के लिए सुझाव निम्नवत् है–

1. बौद्ध दर्शन की शैक्षिक विशेषताएं तथा प्रभाव।
2. बौद्ध शिक्षा प्रणाली में बौद्ध दर्शन का प्रभाव।
3. बौद्ध शिक्षा एंव वैदिक शिक्षा में समानता एवं अन्तर।
4. बौद्ध शिक्षा पर वैदिक शिक्षा का प्रभाव।
5. बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार बौद्ध शिक्षा की महत्ता।
6. बौद्ध शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा की तुलना।
7. बौद्ध शिक्षा का जनसामान्य पर प्रभाव।
8. वर्तमानपरिप्रेक्ष्य में बौद्ध शिक्षा का औचित्य।
9. बौद्ध शिक्षा–दर्शन में स्त्री शिक्षा।
10. बौद्ध शिक्षा दर्शन में सतत शिक्षा का प्रसार एवं प्रभाव।
11. बौद्ध शिक्षा में छात्र–अध्यापक संबंध की संकल्पना।
12. बौद्ध शिक्षा–दर्शन में बौद्ध ग्रन्थों की महत्ता।
13. बौद्ध शिक्षा की इस्लामी शिक्षा से तुलना।
14. बौद्ध शिक्षा दर्शन का विश्व में प्रसार।

आधुनिक शोध ग्रन्थ सूची

1. अल्टेकर, ए0एस0 (1965) : प्राचीन भारत मे शिक्षा वाराणसी,नन्दकिशोरएवं ब्रदर्स।
2. अग्रवाल, एस0के0 (1979–80) : ''शिक्षा के दार्शनिक एवंसमाजशास्त्रीय सिद्वान्त,मार्डनपब्लिशर्स, मेरठ।
3. अश्वघोष (1912) : बुद्व चरित्र, बाम्बे ओरियेन्ट पब्लिशींगकम्पनी।
4. उपाध्याय, बलदेव (1972) : 'बौद्व दर्शन', मोती लाल बनारसीदासवाराणासी।
5. उपाध्याय, रामजी (1966) : प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिकभूमिका, देवभारती एवं लोकभारती प्रकाशन,इलाहाबाद।
6. ओशी, शान्ति (1956) : नीतिशास्त्र, बनारस ज्ञान मण्डल लिमिटेड।
7. कौसल्यायन, भदन्त आनन्द (1961) : भगवान बुद्व और

उनका
धम्म,सिद्वान्तप्रकाशन
बम्बई।

8. कुमार, अनन्त (1974) : बुद्वकालीन राजगृह,
विहार,हिन्दी
ग्रन्थअकादमी, पटना।

9. गार्डन, डी0एच0 (1970) : भारतीय संस्कृति की
प्रागैतिहासिक पृष्ठभूमि
बिहार हिन्दी ग्रन्थ
अकादमी, पटना।

10. गुप्त, नत्थूलाल (1979) : विदर्भ का सांस्कृतिक
इतिहास,विश्व–भारती
पब्लिकेशन, नागपुर।

11. जोहरी, पी0डी0 एवं पाठक, पी0डी0 (1973) : भारतीय शिक्षा की
समस्याऐं,
विनोदपुस्तक मंदिर, पृ0
151–153

12. झा, दिजेन्द्र नारायण, श्री मालीकृष्ण मोहन (2001) : प्राचीन भारत
का इतिहास,
दिल्ली
विश्वविद्यालय।

13. झा और मिश्र (1968) : आचार शास्त्र के मूल
सिद्धान्त, इंडियन
प्रेसप्राईवेट लिमिटेड,
इलाहाबाद।

14. टी0डब्ल्यू0 रिजडेविडस (1950) : बुद्विष्ट इंडिया

कलकत्ता।

15. डॉ0 बसु, दुर्गादास (1998) : भारत का संविधान, प्रेन्टिसहाल ऑफइंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली।

16. डॉ0 बसु, दुर्गादास (1998) : 42वें संविधान संशोधन से स्वीकृत, एवं परिचय–प्रन्टिस हॉल ऑफ इंडिया,लिमिटेड, नई दिल्ली।

17. डॉ0 सुरज, नरेन (1994) : बुद्विष्ट सोशल एण्ड मोरेल एजुकेशन,प्राइमल पब्लिकेशन, पृ.सं. 44–45

18. डॉ0 राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (1970) : गौतम बुद्व और जीवन दर्शन, चतुर्थसंस्करण, राजपाल एण्ड संस, कशमीरी गेटदिल्ली।

19. डॉ0 राधाकृष्णन, सर्वपल्ली (1969) : भारतीय दर्शन, प्रथम संस्करण, राजपाल एण्ड सन्स, कशमीरी गेट, दिल्ली।

20. डॉ0 शर्मा, गोपीनाथ (1969) : भारत का सम्पूर्ण

इतिहास, द्वितीय संस्करण,शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा।

21 डॉ0 शर्मा, डी.एल. (2005) : शिक्षा तथा भारतीय समाज,नवम संस्करण,सूर्या पब्लिकेशन, पृ.सं. – 44

22. डॉ0 पाण्डे, विमलचन्द्र (1985) : महापरिनिष्वाण, सूत्र दीर्घ 203 (प्राचीनभारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिकइतिहास), सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ संख्या 333

23. डॉ0 श्रीवास्तव, के0सी0 (दशम संस्करण–2005) : प्राचीन भारत का इतिहास तथासंस्कृति, यूनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 110

24. डॉ0 पाल, हंसराज (1998) : पाठयचर्या आधार एवं सिद्वान्त, स्कालर्स पब्लिशिंग हाउस, इन्दौर।

25. डॉ0 चौबे, सरयु प्रसाद (1983) : हमारी शिक्षा समस्याऐ,

विनोद पुस्तक मंदिर,आगरा, पृष्ठ संख्या 111

26. तिवारी, गोपालदास एवं कमलाकर (1966) : प्राचीन भारत की सभ्यता का इतिहास, द्वितीय संस्करण, इतिहास प्रकाशन,संस्थान– इलाहाबाद।

27. देव, नरेन्द्र आचार्य (2013) : विक्रम संवत, बुद्व धर्म दर्शन, बिहार राष्ट्रभाषा, परिषद्, पटना।

28. दासगुप्ता, एस0 (1961) : डवलपमेन्ट ऑफ मारेल फिलासकी ऑफइण्डिया, एस नगीन एण्ड सन्स, जालंधर।

29. दिनकर, रामधारी सिंह (1956) : संस्कृति के चार अध्याय, राजपाल एण्डसन्स, दिल्ली।

30. देवराज, एन0के0 (1979) : भारतीय संस्कृति, उत्तरप्रदेश

हिन्दी संस्थान(हिन्दी समिति प्रभाग, लखनऊ)

31. धर्मरक्षित, भिक्षु (1981) : सारनाथ का इतिहास, मोतीलालबनारसीदास,वाराणसी।

32. पाठक, रमेश प्रसाद (2015) : उदीयमान आधुनिक भारतीय समाज मेशिक्षा, विकास पब्लिकेशनस, पृष्ठ संख्या102–105

33. पाण्डे, गोविन्द्र चन्द्र (1963) : बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, हिन्दीसमिति, लखनऊ पब्लिकेशनस् पृष्ठ संख्या83–105

34. प्रो0 सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद (1993) : पंचम संशोधित संस्करण, भारतीय दर्शन कीरूपरेखा, मोतीलाल, बनारसीदास पब्लिकेशन, पृष्ठ संख्या 116

35. प्रो0 पारिक, मथुरेश्वर : उदीयमान और भारतीय समाज और शिक्षण,जयपुर प्रकाशन।

36. पणिक्कर, के0एम0 (1956) : ए सर्वे ऑफ इंडियन हिस्ट्री,एशियापब्लिशिंग हाउस, बम्बई।

37. बाशम, एम0एल0 (1996) : अद्भूत भारत, हिन्दी संस्करण, टनुवादकवेकटेंश चन्द्र पाण्डेय, शिवलाल अग्रवाल एण्ड क0, आगरा पृष्ठ संख्या 240

38. बाजपेयी, कृष्ण दत्त (1980) : भारत के सांस्कृतिक केन्द्र, द मैकमिलनकम्पनी ऑफ इंडिया लिमिटेड, दिल्ली।

39. बापट, पी0वी0 (1956) : बौद्व धर्म के पच्चीस सौ वर्ष, भारत सरकारपब्लिकेशनस् डिवीजन, दिल्ली।

40. बौधानन्द, भदन्त (1960) : भगवान गौत्तम बौद्व, बुद्व विहार, रिसालदारपार्क, लखनऊ प्रकाशन।

41. भट्टाचार्य, सच्चिदानन्द (1989) : भारतीय इतिहास कोश, उत्तरप्रदेश हिन्दीसंस्थान, लखनऊ।

42. मिश्र, उमेश (1970) : भारतीय दर्शन, हिन्दी साहित्य समिति, सूचना विभाग, लखनऊ।

43. मिश्र, जयशंकर (1983) : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।

44. मूले, गुणाकर (1973) : भारतीय इतिहास एवं संस्कृति, ओरियन्टलॉगमैन लिमिटेड, नई दिल्ली।

45. रस्क,आर,आर (1982) : शिक्षा के दार्शनिक आधार, राजस्थान हिन्दीग्रन्थ अकादमी, जयपुर।

46. रामचन्दानी, इन्दु : भारत ज्ञानकोष, खण्ड–4, भारतकोष पुस्तकालय, प्रकाशन–1 साईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, प्राईवेट लि0, नई दिल्ली।

47. लाल, अंगेन (1967) : बौद्व साहित्य मे भारतीय

जीवन, (प्रथम शताब्दी से तृतीय शताब्दी तक), कैलाश प्रकाशन, लखनऊ

48. लाल, युमना (1993) : भारत एवं विश्व मे बौद्व प्रसारक, प्रतिभाप्रकाशक, दिल्ली।

49. लामा, तारानाथ (1971) : भारत मे बौद्व धर्म का इतिहास, काशीप्रसाद जायसवाल शोध संस्थान, पटना।

50. सिंह, मदन मोहन (1972) : बुद्वकालीन समाज और धर्म, बिहार हिन्दीग्रन्थ अकादमी, पटना।

51. सिंह एण्ड सिंह (2000) : भारतीय दर्शन, ज्ञानदा प्रकाशन, नईदिल्ली, पृष्ठ संख्या 185

52. सफाया और शोदा (1969) : शिक्षा के सिद्धान्त और प्रयोग, धनपत रायएण्ड सन्स, जालंधर।

53. सिंह, रघुनाथ (1990) : बुद्व कथा, हिन्दी प्रचारक संस्थान,वाराणसी।

54. श्रीवास्तव, एम0पी0 (1988) : प्राचीन अद्भुत भारत

की सांस्कृतिक झलक,सरस्वती प्रकाशन, इलाहाबाद।

55. हिरियन्ना, एम (1997) : भारतीय दर्शन की रूपरेखा, राजकमलप्रकाशन, प्रा0लि0 नई दिल्ली, पृष्ठ 97–98

56. त्रिपाठी, कमलापति (1973) : खण्ड–1, हिन्दी विश्वकोष, भारत डिस्कवरी पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा,वाराणसी, पृष्ठ 373

57. त्रिपाठी, हकदार (1960) : बौद्व धर्म और विहार, बिहार, राष्ट्र परिषद्, पटना।

मौलिक ग्रन्थ

1. आर्नर, आई0बी0 (1971) : चुल्लवग (अंग्रेजी अनुवाद), लुजाकएण्ड कम्पनी, लन्दन।

2. कश्यप, भिक्खु जगदीश एवं धर्म रक्षित (1954) : संयुक्त निकाय

(हिन्दी अनुवाद), दो जिल्द, महाबोधि सभा, बनारस।

3. कश्यप, भिक्खु जगदीश (1959) : खुदक निकाय, पालि पब्लिकेशनबोर्ड (बिहार सरकार) नालन्दा।

4. कश्यप, भिक्खु जगदीश (1960) : अंगुत्तर निकाय, पालि पब्लिकेशनबोर्ड, (बिहार सरकार) नालन्दा।

5. कश्यप, भिक्खु जगदीश (1972) : मिलिन्द प्रश्न (हिन्दी अनुवाद), जैतवन महाबिहार पाली संस्थान,श्रावस्ती।

6. कोत्सात्याययन, भदन्त आनन्द (1941–56) :जातक (छह जिल्द), हिन्दी अनुवाद,हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयोग।

7. कौसत्यायन, भदन्त आनन्द (1960) : अंगुत्तर निकाय (हिन्दी अनुवाद),महाबोधि–सभा , कलकत्ता।

8. दास, बनारसी एवं मोतीलाल (1922) : निति एवं वाक्यामृतम, बनारसीदासपब्लिकेशन स, वाराणसी संस्करण,बम्बई।

9. प्रकाश, गोविन्द (1969) : अथर्ववेद (अनुवाद), गंगा बुकडिपो,मथुरा।

10. भगवत्, एम0के0 (1937) : धम्मपद पृष्ठ कथा थेरीगाथा, 5 भाग, पालि हेकसर सोसायटी, बम्बई।

11. भिक्खु, धर्मरक्षित (1951) : जातक कथा, प्रथम भाग भारतीयज्ञान पीठ, काशी।

12. भिक्खु, धर्मरक्षित (1956) : चुल्लवग (पालि से हिन्दी अनुवाद)पालि पब्लिकेशन बोर्ड, (बिहारसरकार) नालन्दा।

13. रीज, डेविडस और ई0 कारपेन्टर (1936) : दीर्घ निकाय, (हिन्दी अनुवाद) पी0टी0एस0 लन्दन, महाबोधि सभा,सारनाथ।

14. रीज, डेविडस, टी0डब्ल्यू0 और ओल्डेन वर्ग (1935) : विनयपिटक, हिन्दी अनुवादितरा हुल साकृत्यायन, महाबोधि

सभा,
सारनाथ।

15. रीज, डेविडस (1956) : डाग्लांग्स ऑफ दि बुद्ध, हिन्दी अनुवादित, राहुल साकृत्यायन, महाहोधि सभा, सारनाथ।

16. सांकृत्यायन, राहुल (1958) : मज्जिम निकाय (हिन्दी अनुवाद), पालिपब्लिकेशन बोर्ड (बिहार सरकार), नालन्दा।

17. सांकृत्यायन, राहुल (1988) : बुद्वचर्या (हिन्दी अनुवाद) महाबोधि सभा,सारनाथ।

18. शास्त्री, प0 हरगोविन्द (1955) : मनुस्मृति, चौखम्भा संस्कृत सीरिज,वाराणसी।

अंग्रेजी ग्रन्थ सूची

1. Agarwal, J.c. (2004) : Development of Educational system in india, shipra publication, Delhi.

2. Agarwal, V.S. (1953) : India as known to

panini, Astudy of Cultural material in the Asthadyayi, University ofLakhnow.

3. Agarwal, V.S (1957) : Sarnath, 2nd edition, Department of Archaelogy in India, Delhi.

4. Altekar, A.S (1965) : Education in Ancient India, Varansi, Nand kishor and Brothers.

5. Anand, V.P. Gorge (1971) : The Contribution of Buddhism toEducation (A paper presented in International seminar on Buddhism), Delhi.

6. Ambedker, B.r. (1980) : Buddha and His Dharmma,siddharth Prakashan, Bombay.

7. Bapat, P.V. (1959) : 2500 years of Buddhism,

Publication division governmentof India Delhi.

8. Bapat, P.V (1956) : sects and schools of Buddhism inthe cultural Heritage of India, Vol.1

9. Barau, B.M. (1934) : Gaya and bodh Gaya, 2 Volumes, Calcutta.

10. Barua, D.K. (1934) : Viharas in Ancient India,Culcutta, Gaya Temple Management Committee.

11. Benoytosh (1956) : The tentric Cultural Among the Buddhists, The Cultural Haritage of India, IV-Volume, The religions, Calcutta, (chapter 16).

12. Benoytosh (1932) : Buddhist worship and Idolatry,In Buddhistic studies edited by B.C. law, Calcutta.

13. Bhagwat, N.K. (1933) : Buddhism and Its contribution to Universal religion, The maha bodhi, Vol. 64, Calcutta. B.E. 2500.

14. Bhattacharya, (1958) : The India Buddhist Iconography, 2nd Edition, Calcutta.

15. Dutt, Nalinaksha (1978) : Buddhist sects inIndia,Motilal Banarsidas, Varanasi.

16. Dutt, Sukumar (1962) : Buddhist monks and Monastries of India their history and their contribution to India culture, GeorgeAllen and Unwin Ltd., London.

17. Garg, Garg Ram (1992) : Encyclopedia of Hindu world ;Concept publishing

company, Vol. I, II, III, New Delhi.

18. Gour, Hari singh (1929) : The spirit of Buddhism, Lal chand and sons, Calcutta.

19. Joshi, L.N. (1977) : Studies in the Buddhistic culture ofIndia, Motilal Banarsi das, Delhi.

20. Mathor, V.S. (1968) : Studies in india Education, AgraBook Depot, New Delhi.

21. Mookerji, R.K. (1947) : Ancient Indian Education, Brahamanic and Buddhist, Motilal Banarasi das publicationDelhi.

22. Narsv,P.Laxmi (1948) : The assence of Buddhism, Bhartiya publication House, New Delhi.

23. Ramtake, D.L. (1983) : Reviral of

Buddhism in Modern India, sandeep prakashan, Delhi.

24. Sastri, Hiranand (1930) : Nalanda, in Ancient literature, proceeding of the 5th oriental conference, Poona.

25. Takakvs, J.A. (1966) : Arecord of the Buddhist Religionin India and malaya Archipelego,Delhi.

26. Thaplyal, K.K. (1972) : studies in Ancient Indian seals, Akhila Bhartiya sanskrit parishad, Laknow.

27. Upask, C.S. (1977) : Nalanda, past and present Nava Nalanda Mahavihara,Nalanada.

28. Warder, A.K. (1970, First Ed.) : Indian Buddhism, Motilal Banarasidas publishers,

Pvt. Ltd, Delhi.

इन्टरनेट पत्र–पत्रिकांए एवं जरनल्स

1. https://hi.m.wikisource.org
2. www.kalyan.gitapress.org
3. https:hi.m.wikipedia.org>young India
4. www.divyanarmada.in
5. en.bharatdiscovery.org>india
6. www.researchpublish.com
7. www.linguistics-Journals.com
8. www.journals.elsevier.com
9. www.experiments.in.education.150n.com
10. www.outreachworld.org/ortide.asp/articles.

सर्वे एवं डिक्शनरी

1. बुच.एम.बी. (1986) – थर्ड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन (1978–83), एन.सी.आर.टी. पब्लिकेशनस, नई दिल्ली, Vol-1
2. बुच.एम.बी. (1991) – फोरर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन (1983–88), एन.सी.आर.टी. पब्लिकेशनस, नई दिल्ली, Vol-1
3. बुच.एम.बी. : सिक्सथ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन, Vol-1 एन. सी.आर.टी. पब्लिकेशनस, नई दिल्ली, (1993–2005),
4. डॉ0 वर्मा, धीरेन्द्र (वि.स. 2020), हिन्दी साहित्य कोश भाग–1, 2, ज्ञानमण्डल, वाराणसी।
5. आप्टे, वामन शिवराम (1977 ई0), संस्कृत हिन्दी कोश, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली संस्करण।